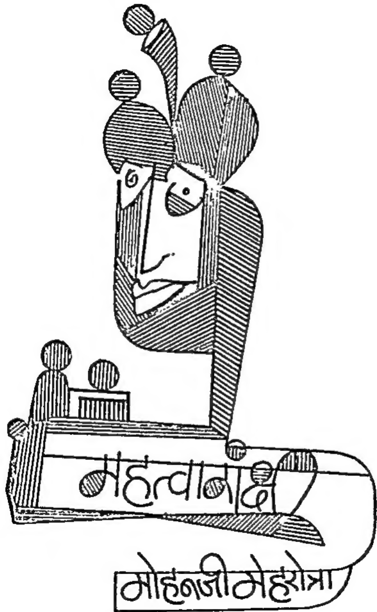
[illegible]



प्रतिभा प्रकाशन *
५१९, के० एल० कीडगंज, इलाहाबाद


महत्वाकांक्षी
मोहनजी मेहरोत्रा

प्राक्कथन

'महत्त्वाकांक्षी' एक लम्बे अन्तराल के बाद आपके समक्ष है। इसमें मानव के अन्तर्मन की शाश्वत कहानी है। अमर, सुषमा, दिनेश, प्रिंसिपल साहब आदि के चरित्र में आज के बनते-बिगड़ते समाज की छाया उभरती है।

अमर बचपन से ही अभिशाप-ग्रस्त है। अपने अदम्य-उत्साह और जिजीविषा के कारण वह एक नयी मंजिल पर पहुँचने का सही रास्ता ढूंढ लेता है। जुझारू व्यक्तित्व निरन्तर सन्त्रास मे जीता तथा विपत्तियों से टकराता है। अमर के लिए जब तक सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था बदल नही जाती, जीवन-दर्शन का आयाम समग्रतः मानवतावादी नही हो पाता। अपने अटूट संघर्षशील व्यक्तित्व के द्वारा अमर एक नयी जमीन तोड़ने में समर्थ होता है।

वर्तमान समाज-व्यवस्था मे नारी-स्वातन्त्र्य का स्वर्णिम अध्याय भी जुड़ा है। सुषमा के त्यागमय जीवन का उद्देश्य भी उपन्यास में यत्र-तत्र द्रष्टव्य है। सुषमा की सहानुभूति, ममता, प्रेम और अन्तस्तल के मर्म को स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता अमर की डगमगाती चेतना को नया जीवन, सबल और प्रेरणा प्रदान करती है। सुषमा का आचरण आधुनिक नारी को सचेतन एवं संवेदनशील बनाने में समर्थ-प्राय है।

दिनेश-जैसे पात्र समाज में आज भी अवस्थित हैं। अमर का व्यक्तित्व दिनेश के सान्निध्य के बिना कदाचित् अपूर्ण है। कमजोर आदमी कितने ऊहापोह के दौर से गुजरता है, इसका प्रतीकात्मक उदाहरण है दिनेश का व्यक्तित्व !

अमर की माँ उपन्यास को कथा के नये क्षितिज तक ले जायेगी-ऐसा उपन्यासकार का अभिमत है।

—मोहन जी मेहरोत्रा

५४५, मालवीय नगर, इलाहाबाद

गरीबी अल्पायु में आदमी को बुजुर्ग बना देती है। अमरनाथ जब चौथी जमात का विद्यार्थी था, तभी उसके ४१ वर्षीय पिता परलोक सिधार गए थे। घर की बची-खुची पूंजी से माँ-बेटे किसी आशा में बंधे, ऊँचे-नीचे पठारों को पार कर रहे थे। अमरनाथ को अच्छी तरह याद है कि उसके पिता गोद में लेकर, उसे गर्व से पुचकारते, छाती से लगाते और सुनहरे भविष्य की कल्पना में घंटों आत्म-विभोर रहते। घर में जिस दिन, खाने-पीने की सामग्री समाप्त हो जाती, अमर के लिए, दूध के पैसे जुटा पाने में माँ के असमर्थ रहने, तो बालक अमर अपने घर की स्थिति आँखें फाड़-फाड़ कर समझता-बूझता। समय पर दूध न मिलने पर माँ वह आँखें बन्द किये पड़ा रहता। माँ आती; उसे झकझोरती, तो अपने होठ भींचते देर नहीं लगती थी उसे। बोतल का नेपल अपने कोमल होठों में भींचता और पुपले मुँह से सारा-का-सारा दूध गुट कर जाता। माँ, सोचती-शायद अभी भूखा है। थोड़ा दूध और होता'''पर, पैसों का अभाव अमर को भूखा ही रखता। उसे लगता, जैसे उसके कलेजे में किसी ने शूल चुभो दिया हो। वह अक्सर माँ को फूट-फूट रोते देखता। माँ की आँखों में खारे आँसू देखकर वह बहुत चाहने पर भी अपने आँसू न रोक पाता। उसे अच्छी तरह याद है, कि माँ के मुस्कानित होते ही वह अपनी आँखें बंद कर लेता और दिखाने के लिए झूठ-मूठ नींद की खुमारी में पड़ा रहता।

पिता पहले-पहल जब क्षय रोग से आक्रांत हुए उस दिन अमर के अन्तःकरण में काफी उथल-पुथल हुई थी। यह तो ज्ञात नहीं कि उसके

दिमाग में किसी रोग को समझ सकने की क्षमता जागृत हो गयी थी। तथापि उस दिन उसे अत्यधिक घुटन और उत्पीड़न का अनुभव हुआ था। उसने, अपने कमरे की सामने वाली दीवाल पर उस दिन एक मटमैली छिपकली देखी थी, जो मकड़ी के जालों को बार-बार तोड़ देती थी और स्वयं उस जाल में फँसकर परेशान हो हाथ-पैर मारती थी। अमर को भय प्रतीत होता था, छिपकली को, मकड़ी के श्रम से निर्मित घर में घुसते देखकर! उस दृश्य के ठीक बाद ही उसने अपनी दुबली-पतली माँ को रोते देखा था, जो रुग्ण पिता को सहारा देकर मंजे पर लिटा रही थी। माँ! घंटों पिताजी के पास बैठी रहती और उनके पैरों के तलुवे और सर तेल से घिसा करती। खाने-पीने का कोई नियम नहीं रह गया था। बाबूजी के अनुरोध पर माँ अनिच्छा से उठतीं, दूध में आधा पानी मिला कर मुझे पिलातीं। शायद कुछ कहती भी जातीं। फिर, नीचे उतर कर भोजन तैयार करतीं। बाबूजी को कुछ खास-खास पथ्य ही दिया जाता। दोपहर जब वे झपकी लेते, तब माँ मोटे-टाइप वाली रामायण पढ़ने बैठ जातीं। बीच-बीच में उसका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता। मैं सोचता कि कदाचित् माँ को रामायण का उक्त स्थल मर्माहित कर बैठा हो या उक्त चौपाई अधिक अनुभूति-साम्य हो! पास-पड़ोस की औरतें फर्ज-अदायगी के लिए प्रायः आ जातीं। माँ, दस-एक मिनट तो उनकी संवेदना ग्राह्य कर पातीं। किन्तु उनका एक स्वर से बोलते रहना, उन्हें कदापि अच्छा नहीं लगता था। उनका वह दिन समान्यतया खराब बीतता। रामायण पढ़ने के लिए उस दिन उन्हें रात को ढिबरी की रोशनी में आधा-एक पृष्ठ हृदयंगम करना पड़ता। बाबू जी की नींद उचट जाती, तो वे टोक देते अथवा कुछ समय बाद माँ स्वयं ही लाल बेठन में लपेटकर रामायण आलमारी में रख देतीं। अनन्तर खुरदुरे पलंग पर बेसुध पड़ जातीं। मुझे अपने संग तभी सुलातीं, जब या तो मेरी तबीयत खराब रहती, अथवा साथ सुलाने का मोह संवरण न कर पातीं। मेरा बिस्तर, छोटे खटोले पर, बाबूजी की चारपाई के बगल में लगा रहता। बाबूजी की

भयंकर खाँसी मुझे बेचैन कर देती थी। खाँसते वह थे दम मेरा निकलता था। मुँह से निकले खून के कतरों को देखकर मुझे अनिष्ट की आशंका उसी वक्त होने लगी थी। घर के उस घुटे वातावरण ने मेरा विवेक थोड़ा-थोड़ा जगा दिया था। इसीलिये तो पिछली बातें मुझे आज भी याद हैं।

आठ-नौ वर्ष का था, तो चौथे दर्जे में पढ़ता था। भरसक प्रयत्न यही करता कि अधिकांश समय पढ़ाई-लिखाई में ही व्यतीत हो। दोस्तों से मिलना-जुलना बुरा नहीं मालूम होता था। हाँ, किसी को घनिष्ठ मित्र पद पाने का अधिकार प्राप्त नहीं हो पाता था। कुछ अपनी एकान्तप्रियता और दोस्तों की रुझान, उस समय मित्रता के लिए प्रेरित नहीं कर पाती थी। स्कूल से सीधा घर आता। बाबू जी के सिरहाने बैठ जाता। उमड़े मन से एक-टक उनके मुँह के उतरते-चढ़ते भाव पढ़ता रहता। पेट में चूहे कूदते रहते। मन करता कि यदि मूँग चने ही मिल जायें तो दो मुट्ठी चबा डालूँ। अक्सर ऐसा करता भी। उस सौभाग्य भी मुझे बहुत कम मिलता। माह भर का नपा-तुला राशन! मुश्किल से तीस दिन चल पाता। दाल-चावल के अतिरिक्त जौ और बाबू जी के लिये थोड़ा-सा गेहूँ माँ मण्डी से खरीद लाती थी। वह दिन कम नसीब होता था मुझे, जब जौ-चने के साथ गेहूँ की भी एक-आध रोटी मुअस्सर हो जाती! किसी-किसी दिन बाबू जी अपनी निश्चित खुराक से एक-आधी कम खाते, तो माँ मुझे दे देती। मेरे भोजन में पुष्टकारी तत्त्व कम सम्मिलित रहते! फलतः मस्तिष्क सारी कोशिशों के बाद भी जंग लगे पुर्जे की तरह अपनी तासीर दिखलाता। घर के अनेक कामों को निबटाने के बाद मैं दो-तीन घंटा पढ़ता रहता। पठन-सामग्री आधी ही पचा पाता था। माँ समझती कि शायद मैं बहाना करने के लिए किताब खोले बैठा रहता हूँ। कपड़े मुझे ज्यादातर अधूरे ही पहनने पड़ते थे। बाबू जी जब आफिस जाते थे, तो महीने-सवा-महीने बाद धोबी आता था। धुले

कपड़ों में मेरा कोई नेकर या कुरता-कमीज नहीं रहता था। एकमात्र दो जोड़ी कपड़े थे। फिर कहाँ से मेरे कपड़े धोबी को दिये जाते? एक जोड़ी में काम चला पाना मेरे लिए नामुमकिन था। साफ कपड़े पहनता, तो सारा दिन अच्छा बीतता! मैले-गन्दे कपड़ों से मुझे सारी दुनिया बेहूदी-सी जान पड़ती थी। धोबिया-साबुन यदि मुझे दिखाई पड़ जाता, तो दस काम छोड़कर एक जोड़ी कपड़े जरूर धो-सुखा आता! माँ, मेरी, इस फैशन-परस्ती पर अक्सर नाराज होती! उनकी अन्य घुड़कियों का तो मुझ पर रोब अवश्य गालिब था, किन्तु वस्त्र-सफाई के सम्बन्ध में उनकी अप्रसन्नता ही मुझे भली मालूम पड़ती। स्कूल में जिस दिन मुझसे साफ रहने को कहा जाता, उस दिन न तो मेरा पढ़ाई-लिखाई में मन लगता, न ही किसी साथी के साथ बात-चीत करने में! इन दिनों मैं अपने बीच किसी ऐसे विद्यार्थी को नहीं खोज पाया था, जो मेरी असलियत को समझ सकने की कोशिश करता! मास्टर जी यदि किसी बात के लिए मुझे घुड़कते, तो सहपाठीजन भी उन्हीं का साथ देते। जैसे मेरा अपना कोई व्यक्तित्व ही न हो! दूसरे लड़के खाकी जीन के नेकर और चैक के जालीदार अच्छे धुले बुशर्ट पहिनकर आते, तो मैं उन्हें आँख भर देख सकने का साहस नहीं कर पाता। छुट्टी के वक्त उनकी भद्दी फिकराकशी, खिलखिलाहट, मारपीट और असहाय लड़कों को परेशान करने की प्रवृत्ति, मुझे अत्यन्त कष्ट पहुँचाती थी। अक्सर मेरे दो-चार सहपाठी, मुझे बेवकूफ बनाने की फिक्र में रहते। घबराहट में या तो मेरे मुँह से अंट-संट निकल जाता अथवा रो पड़ता उनके सामने मैं। रोने से लाभ ज्यादा होता था। एक-न-एक फौरन मेरा तरफदार बन जाता और प्रतिद्वन्द्वियों को रफू-चक्कर कर देता था। एक बार, मुझे जहाँ तक स्मरण है, लड़कों ने मुझ पर चोरी का झूठा अभियोग भी लगाया था। क्लास में लेजर (इंटरवल) होने पर प्रायः सभी लड़के अपनी-अपनी कापी-किताब साथ रखते थे। चोरी होने का कोई अंदेशा ही नहीं था। किसी लड़के की कोई किताब खो गयी। पंडित जी के क्लास में प्रवेश

करते ही वह लड़का जोर-जोर से रोने लगा। उसकी रुलाई जब पराकाष्ठा पर पहुँच गयी, तो पंडित जी मेरे समीप आये और बिगड़कर बोले—

—"किताब कहाँ छिपाई है अमर? याद रख! चोरी की सजा मिलेगी, तो छठी का दूध याद आने लगेगा।…"

मुझे काटो तो खून नहीं! मैं सब निर्वाक् पंडित जी के सम्मुख नत-मस्तक खड़ा रहा। दो मिनट जब इसी प्रकार बीत गया, तो पंडित जी लाल आँखें चढ़ाकर बोले—ऐसे नहीं बोलेगा तू! और दाएं-बाएं, ऊपर-नीचे मेरी पिटाई शुरू हो गयी। काफी देर तक मैं सिसकता रहा। पंडितजी हेडमास्टर के पास गये और एकतरफा उन्होंने मुझे चोर साबित कर दिया। मैं बुलाया गया। मेरी सूरत देखकर हेडमास्टर साहब भी त्योरी चढ़ाने लगे कि मुझे खा जायेंगे। मुझसे पुनः पूछा गया कि 'पुस्तक किसे दी है?' पहले मेरी हिम्मत नहीं पड़ी। लेकिन मैंने देखा कि कुछ न कहने का मतलब भी पक्का चोर बनने के समान है। एकबारगी मेरे मुँह से निकल गया—

"आप मुझे मार डालिए! मैंने किताब नहीं चुराई है!"

शायद हेडमास्टर साहब मेरे जवाब से संतुष्ट हो गये। दूसरे दिन मुझसे किसी ने कुछ नहीं कहा। मैं हिकारत भरी निगाह से जरूर देखा जाने लगा। दो दिन बाद उसी लड़के के पास मैंने उसकी पहले वाली पुस्तक देखी। काश कि मैं पंडित जी से पूछ सकता कि किताब कहाँ से मिल गयी? जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। वही हँसी-खिल्लो का वातावरण! सब लड़कों का मिलकर शोर-गुल मचाने का षड्यन्त्र आदि! किन्तु मेरी स्थिति कुछ और ही थी। मन करता कि पंडित जी के आने पर सिर पटक दूँ और अपनी सत्यता का अनुसन्धान दूँ! जहाँ एक ओर मेरे अन्दर क्रोध की सीमा नहीं थी, वहीं खून के घूँट पी जाने की अद्भुत क्षमता भी मुझमें व्याप्त थी। दूसरों का अन्याय

दिन के लिए सहे जा रहा था; यह समझने की बुद्धि मुझमें नहीं रही। अप्रकट मुझे आस-पास के प्रत्येक असमान व्यक्ति से घृणा थी।

जाड़ा-बरसात अपनी स्मृति छोड़ चुके थे। पतझड़ के शुरू में ही अलस-फिजा का आधिपत्य कुछ-कुछ अखरने लगा था। अब कोई स्थिर नियम नहीं रह गया था। गुरुजन भी पढ़ाई की तरफ अधिक ध्यान दे रहे थे। उपदेश प्रायः यही दिया जाता था कि पढ़ाई के साथ खेल-कूद का भी महत्व है।

स्कूल-घर सभी जगह मेरी दिनचर्या में कोई अन्तर नहीं आने पाता था। शरीर से मैं जितना कृश था, दिमाग से भी उतना ही कमजोर। खाने-पहनने के लिए जैसा पहले नसीब था, वैसा ही अब। माँ की उदासी और बाबू जी की बीमारी में कोई कमी नहीं थी।

परीक्षा चल रही थी। मैं जब चाहता, पढ़ने बैठ जाता और जब माँ कहती बाजार जाकर कोई सामान खरीद लाता। यदि मुझे इम्तिहान की थोड़ी चिन्ता थी, तो माँ को बिलकुल नहीं। सुबह होल्डर लेकर घर से निकल जाता। परीक्षा-समाप्ति पर माँ यह पूछ लेना शायद आवश्यक नहीं समझती थीं कि मेरे पर्चे कैसे हो रहे हैं! बाबू जी यथावसर पूछ लेते थे। धीमे स्वर में मुँह हिलाकर मैं हाँ-ना का संकेत उन्हें दे देता था। परीक्षा के समय एक दिन रात को मुझे ज्वर आ गया। घबराहट बढ़ जाने के कारण, न चाहने पर भी मेरे मुँह से दर्द-भरी चीत्कारें प्रस्फुटित होने लगीं। माँ उठीं। ढिबरी जलाकर मेरे सिरहाने खड़ी हो गयीं और ऊँघते स्वर में मेरी परेशानी का कारण पूछने लगीं। मेरा माथा तवे-सा जल रहा था। हाथ फेरते ही कातर हो उठीं माँ। रात्रि आधी से ज्यादा जा चुकी थी। खट-खुट सुनकर बाबू जी भी उठ बैठे। जल्दी से अनासीन की टिकिया और आधा गिलास पानी ले आयीं। हाथ का सहारा देकर, टेबलेट पानी के संग निगल जाने को कहा। टिकिया खाने के दो घंटे बाद मेरी बेचैनी दूर हो गयी। नींद भी आ

गयी थी। सुबह छः बजे घबड़ाकर उठ बैठा और नेकर-कमीज पहन-कर स्कूल जाने की तैयारी करने लगा। माँ ने टोका कि रातभर तो बुखार में जलता रहा, और अब जा रहा है…

—बुखार तो उतर गया है माँ! अब मुझे तकलीफ नहीं। मास्टर जी से कह कर जल्दी ही आ जाऊँगा। मासिक हो तो होगी—आज परीक्षा।

—कुछ याद-याद भी है तुझे!

—हाँ, माँ!…और मैं बाहर हो गया।

स्कूल पहुँचकर मैंने बहुत चाहा कि मैं मास्टर जी से रात वाली बात कह दूँ। मन पर समाया हुआ था कि झूठा बहाना समझकर मुझे पिट न दें; तो? फलतः यथाशक्ति मैं सम्हाले ही रहा अपने को। और दिन होता तो दूसरे लड़के मुझे घेर लेते और इधर-उधर की हजार बातें कहते-सुनते। उस दिन मैंने देखा कि मुझसे बात करने की कौन कहे? शक्ल देखना तक उन्हें गवारा नहीं था। सोचा था कि मास्टर जी जब बुलायेंगे, तभी जाऊँगा। अकस्मात् अपना नाम पुकारे जाने पर मुझे अचरज हुआ। मैं दौड़कर मास्टर जी के सामने खड़ा हो गया। सिर ऊपर उठाते ही मास्टर जी मुझसे बोले—कैसी सूरत बना रखी है तूने?

—रात बुखार आ गया था जी। मुँह धोकर सीधे चला आ रहा हूँ।

—तो पढ़ा ही क्या होगा?

—नहीं, पढ़ा था जी!…बुखार तो रात को देर से चढ़ा था।…

—अच्छा, बताओ! नक्शे में सिन्धु और झेलम कहाँ है?

मैं नक्शे की ओर बढ़ा और अँगुली से दोनों स्थान दि

शायद मुझ पर तरस आ गयी उन्हें। तुरन्त बाद ही मुझे उन्होंने घर जाने की आज्ञा दे दी। कुछ आगे बढ़ा, तो बोले—

—कल क्या है तुम्हारा।

—हिन्दी !...सर !

—अब घर जाओ। अभी जाकर सो जाना। दोपहर को पढ़ना। रात को जरा भी मत पढ़ना।....घर पर कौन पढ़ाता है ?

—खुद ही पढ़ता हूँ। बाबू जी को बीमार हुए अरसा हुआ। दफ्तर से आधी तन्खाह मिलती है। डॉक्टर उठने-बैठने को मना करते हैं। कभी-कदाप ही वे मुझे कुछ पढ़ा देते हैं ? ज्यादातर आप ही पढ़ता हूँ।...

कमरे से बाहर निकला, तो बीच में ही कई लड़कों ने मुझे घेर लिया। मास्टर जी द्वारा पूछे प्रश्नों के सम्बन्ध में सब उलझते रहे। मैंने जब कहा कि मास्टर जी ने मुझसे ज्यादा प्रश्न पूछे ही नहीं, तो किसी ने भी मेरा विश्वास नहीं किया। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाकर लौटा।

दूसरे दिन मेरी तबीयत बिलकुल ठीक हो गयी थी। रोज की तरह छक कर दाल-रोटी खायी। शेष विषयों की परीक्षा भी समाप्त हो गयी थी। मई का महीना चल रहा था। धुक-धुक थी अब नतीजा देखने की। किसी को भले ही फेल-पास की फिक्र न रहती हो। बचपन में होनी भी नहीं चाहिए। पर, मुझे साधारणतया दूसरों की अपेक्षा ज्यादा परेशानी, यह सोच सकने में कि कहीं बिगड़ गया परीक्षा-फल, तो मुँह क्या दिखाऊँगा ? बड़े-बड़े उद्गार उठने लगे थे मेरे छोटे से दिल में। कुछ अपनी पृथक् परिस्थितियों के कारण और कुछ रंजीदा तबीयत की वजह से !

सुबह पिता जी की दवा मैं डॉक्टर यादव से ले आता था। मां

मुझे कभी रुपये का नोट देती और कभी दस-बारह आने की रेजगारी ! कम्पाउन्डर लाल-हरी-पीली दवा का घोल मेरी बोतल में भरकर कार्क लगा देता था। मन-ही-मन कोसता हुआ मैं उसे पैसे गिनता और बाबूजी के सिरहाने बोतल रख देता। अब तक उन्होंने जितनी दवा पी थी, उसमें रोग-निदान के लक्षण नहीं पड़ते थे। आधी तनख्वाह से गृहस्थी का खर्च और ऊपर से रुपये-दो-रुपये रोज की दवा ! बाबूजी का, मेरी समझ में जरा-जरा-सी बात में बिगड़ पड़ना प्रायः स्वाभाविक ही था।



परीक्षा-फल सुनाया जाने वाला था। भारी-मन से नहा-धोकर सर्वप्रथम मैं मार्ग में पड़ने वाले काली-देवी के मन्दिर में गया। साष्टांग दंडवत करने के बाद दीन-भाव से विनती की। माथे में भभूत लगाकर बाहर निकला। स्कूल में आज अभ्यागतों की संख्या अधिक थी। जिन्हें पास हो जाने का पूर्ण विश्वास था, वे प्रसन्न-वदन अपने अभिभावकों के साथ घूम रहे थे। कमजोर और शंकालु विद्यार्थी मुँह छिपाते फिर रहे थे। अध्यापक अपने-अपने दर्जे का रेजल्ट प्राप्त करने में लगे थे। कुछ देर बाद सब लोग प्रार्थना-स्थल पर खड़े हो गए। सालान्त की प्रार्थना हुई। प्रधानाचार्य का सारगर्भित उपदेशात्मक भाषण हुआ। अनन्तर विद्यार्थी क्लास में प्रविष्ट हुए। हम लोगों का रेजल्ट क्लासटीचर के हाथ में था। उनके पैर रखते ही लड़कों की सारी सिट्टी-पिट्टी भूल गयी। बिना कुछ कहे एक-एक लड़के को रेजल्ट-कार्ड बाँटा जाने लगा। मेरा नतीजा देखते ही हँसे! बोले—वाह! शाबास! तुम तो फर्स्ट आये हो। तुम्हारे घर से कोई नहीं आया?···

—नहीं! जल्दी में इतना भर ही निकला मेरे मुँह से।

आने लगा, तो साथियों में से कोई कुछ न बोला। जो सेकेण्ड-थर्ड आये थे, उन्होंने टोटल जरूर मिलाया। कदाचित् उन्हें प्रथम उत्तीर्ण होने की आशा थी। रास्ते में मुहल्ले के दो-चार बड़े-बूढ़ों ने मुझसे नतीजे के बाबत पूछा। सतृष्ण आँखों से मैंने उन्हें देखकर अपना परीक्षाफल उनकी तरफ बढ़ा दिया। शाबासी-थपथपी के सिवा उन सबों ने भी कुछ नहीं कहा।

घर आया। माँ पूछने लगी—पास हो गया न रे !

तत्काल मैं कुछ न बोला, तो माँ दौड़कर मेरे पास आयी और नतीजा छीनकर देखने लगी। देखते ही, बाबू जी के पास कार्ड ले गयी और मायूस उनसे कुछ कहने लगी। पता नहीं, क्यों मुझे थोड़ी शरम और झेंप मालूम हुई ! मैं सीढ़ी पर ही खड़ा रहा। बाबू जी के बुलाने पर ऊपर आया, तो उन्होंने पहली बार नम्रता से मुझे अपने पास बिठाया और गर्व-भरी आँखों से मुझे देखा। बातें उन्होंने बहुत-सी कह डालीं। मैं शान्त-चित्त बैठा रहा नीचा सिर किये ! तकिया उठाकर उन्होंने पर्स खोला और एक रुपया निकाल कर मुझसे कहा कि लड्डू चढ़ा आओ, महावीर जी को !

उठने लगा, तो माँ बोली—घर में ही क्यों न बना लूँ ! जा बेसन, घी और चीनी खरीद ला। शाम तक भोग लग जायगा। बरकत भी रहेगी। घी का मर्तबान उठाकर मैं बाहर निकल गया। वापिस लौटने लगा, तो बहुतों ने लड्डू-मिठाई का तगादा किया। मैं स्वीकारात्मक मूड़ी हिलाता हुआ सबको एक-सा उत्तर देता रहा।

लड्डू बने। भोग लगा। एक-दो घर बँटे भी गए। किन्तु मुझसे न खाया गया। महसूस हुआ कि जो पास हुआ हूँ, अगर वही लड्डू खाना शुरू कर देगा, तो उसकी खुशी क्या बाकी बचेगी ? दूसरे यह भी कि कुछ अजीबो-गरीब स्थिति में पड़ गया था, उस दिन ! सबको चाहे जितनी प्रसन्नता हुई हो, किन्तु मुझे न रात को नींद आयी और न ही सबेरे। नींद टूटने पर ज्ञात हुआ कि रातभर बाबू जी काफी परेशान रहे। छत पर सो रहा था। फलतः अर्द्धनिद्रित होना हुआ भी नीचे की खबर नहीं ले सका। नीचे उतरा, तो स्वतः आत्म-ग्लानि से भर उठा। बाबू जी की पीड़ा मुझे बेहद कचोट रही थी। अचानक उनके मुँह पर जो भाव अभिव्यक्त हो उठे थे, वे भीतर-ही-भीतर मुझे भयावह प्रतीत हो रहे थे। माँ कभी, सारा दिन चुप रहती ! कभी बाबू जी से कुछ

कहतीं। और, कभी रामायण पढ़ने में मशगूल रहतीं। उनकी हूले-दिली मुझसे छिपी नहीं थी। ये सब देखकर मुझे भी कुछ अशुभ लग रहा था। आज माँ इस कदर उदास और डरी हुई क्यों दीख रही हैं? डॉक्टर बुलाने के लिए भी कह रही हैं।...मैंने माँ से आग्रह किया कि अभी तो शायद न आये हों डॉक्टर! प्रायः डॉक्टर को जब मैं बुलाने जाता, तो बाबू जी विरोध प्रकट करते थे। उस दिन बाबू जी एकदम निस्पंद पड़े थे। मुझे यह तो मालूम नहीं था कि डॉक्टर साहब दुकान के अतिरिक्त कहाँ रहते हैं? सोचा, पता लगा लूंगा!...

रास्ते में जितने देव-स्थान मिले, सब जगह बाबू जी की कुशलता के लिए दुआयें माँगता रहा। फकीर, जो पेट दिखाकर गिड़गिड़ा रहा था; जेब में बहुत दिनों से सुरक्षित दो पैसे उसे दे दिये मैंने। मिलने वालों से डॉक्टर यादव का वास-स्थान भी पूछता जा रहा था। किसी ने भी ठीक-ठीक पता नहीं दिया। एक बोला—व्यर्थ जा रहे हो तुम! एक-आध घंटे में दवाखाने में मिल लेना।

मुश्किल से उनके घर पहुँचा। नौकर ने बैठने का आदेश दिया। मैंने बारबार प्रार्थना की। नौकर शायद, सचमुच गरीब था। तसल्ली देने लगा—सब ठीक हुई जाई! अब आवत ही हैं डाटर साहब।

और मैंने देखा कि डॉक्टर साहब कमरे में दाखिल हो चुके थे।

मुझे देखते ही बोले—कैसी तबीयत है तुम्हारे पिता की?

—उसी के लिए आया हूँ जी। माँ ने आपको संग लाने को कहा है। कल रात से ही बाबू जी घबड़ा रहे हैं?

घर आकर, बाबू जी से डॉक्टर साहब ने पूछा—कैसी तबीयत है?

बाबू जी ने उखड़े मन से धीमे स्वर में कहा—बिलकुल ठीक नहीं है डॉक्टर साहब। मुझे किसी तरह बचाइए। क्या होगा?...और रोने लगे।

—घबड़ाते क्यों हैं! अभी दवा देता हूँ। सब ठीक हो जायगा।

कान में आला लगा कर उन्होंने बाबू जी की पेट-पीठ देखी। अनन्तर हाथ की नब्ज देखी।

माँ से पूछने लगे—रात के बजे में इनकी तबीयत ज्यादा खराब हुई।

—कोई दस बजे!

—बलगम कितनी बार गया?

—लगातार जा रहा है। कुछ कीजिये। मुझे तो पता नहीं क्या होता जा रहा है।

—घबड़ाने की कोई बात नहीं है। आप दवा देती जाइये, बस।

बैग खोलकर उन्होंने चम्मच में कोई दवा उँडेली। बाबू जी मुँह बनाकर किसी प्रकार पानी के सहारे सारी दवा निगल गये। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि अब बाबू जी अच्छे हो जायेंगे। जैसे रोज, चुपचाप चारपाई पर पड़े रहते थे, वैसे अब भी पड़े रहेंगे।

मैं डॉक्टर साहब के संग दवा लाने चला गया। कुछ मरीज पहले से ही वहाँ मौजूद थे। डॉक्टर साहब ने कम्पाउडर से मेरी दवा आदि शीघ्र बनाने का आदेश दिया।

माँ ने आते समय मुझे पाँच का नोट पकड़ा दिया था। दवा लेकर नोट जब मैंने डॉक्टर साहब की तरफ बढ़ाया, तो मुझे ऊपर-से-नीचे तक घूरा और ढाई रुपये काट कर शेष लौटा दिये। मैं जल्दी-से घर वापिस आ गया।

डॉक्टर साहब के आने के दो घंटे बाद बाबू जी की स्थिति में थोड़ा सुधार हो गया था। माँ, भी बाबू जी को अकेले छोड़कर नीचे-उतर आयी थीं। शायद दलिया पकाने की व्यवस्था में रत थीं। डेढ़ बज चुका था। और दिन होता, तो भूख के मारे मेरा होश फाख्ता हो जाता! सुबह से ही उस दिन मैं गमगीन रहा। अन्दर-से कुछ भी खाने-पीने की इच्छा नहीं हो रही थी। माँ, दुबारा नहा-धोकर जब रसोई-घर में प्रविष्ट हुईं, तो उन्होंने दो थालियों में दलिया परस दी।

कुछ कहना चाहकर भी माँ कुछ न बोलीं। मैंने देखा, पाँच-पाँच मिनट पर उनका एक-एक कौर मुश्किल से कंठ के नीचे उतर रहा था। परसी दलिया समाप्त हो गयी, तो उन्होंने थोड़ी और लेने के लिए कहा। पहले से मुझे भूख कम थी। माँ बार-बार न कहतीं, तो शायद न भी खाता ! जब मैंने देखा कि मेरे न करने से माँ पर बुरा असर पड़ेगा। इसलिए बिना संकोच जल्दी-जल्दी सारी दलिया उदरस्थ कर गया।

हाथ-मुँह धोकर ऊपर आया। बाबू जी के सिरहाने बैठकर हाल-चाल पूछने लगा। तकलीफ बढ़ जाने के कारण बाबू जी स्यात् बोल सकने में असमर्थ थे। कई बार बात दोहराने पर बाबू जी ने केवल इतना कहा—

—जी बैठा जाता है ! आज से पहले उन्होंने अपनी तबीयत के बारे में इस तरह मुझसे कुछ नहीं कहा था। बीच में माँ आ गयीं। बोलीं—

—दवा की दूसरी खुराक भी ले लीजिए। वक्त हो गया है।

—कोई लाभ-आभ तो हो नहीं रहा। चाहो, तो दे दो।

माँ बाबू जी के मुँह से निकले शब्द सुनकर हतप्रभ-सी हो गयी थीं। मुझे भी कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। कुछ आभास-सा हो रहा था मुझे, किसी अनिश्चित अशुभ घड़ी का।

मैंने माँ से कहा—डॉक्टर साहब को हाल बता आऊँ ?…

कुछ देर मेरी बात का उत्तर नहीं मिला। पुनः अपनी बात मैंने दोहराई, तो उन्होंने सिर हिला दिया। बिना चप्पल पहने मैं द्रुतगति से डॉक्टर साहब के पास पहुँच गया।

मरीजों का ताँता लगा था। मैं बैठा उनके सामने था, किन्तु हिम्मत नहीं पड़ रही थी स्वतः उनसे कुछ कहने की। दो-तीन मरीज एक के बाद एक अपनी-अपनी रिपोर्ट पेश करते रहे। लगभग पन्द्रह मिनट बाद मैं कुर्सी छोड़कर उनके सामने हो गया। यह नहीं कि उन्होंने मुझे उससे पहले देख न लिया हो। हाल-चाल पूछते वक्त ऐसा जाहिर किया, मानो अभी-अभी देखा हो।

सारा हाल सुनने के बाद उन्होंने मुझे सुबह वाली दवा देते रहने की ताकीद दी। उनके मुँह से इस बात को सुनकर पता नहीं क्यों मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा। पराजित-सा हाथ हिलाता हुआ वापिस आ गया। डॉक्टर साहब की कही बात जब माँ को सुनायी, तो अत्यन्त क्षोभ हुआ।

माँ ने कहा—शायद तेरी बात उन्होंने ठीक समझी नहीं।

मैंने कहा—नहीं माँ! सब कुछ सुनने के बाद उन्होंने कहा कि फिलहाल सुबह वाली दवा ही चलेगी। इतनी जल्दी दवा नहीं बदली जाती।

आगे, मेरी बात सुनने के लिए माँ बिल्कुल तैयार नहीं थी। मैं फिर भी डॉक्टर के दोहराये-शब्द व्यक्त किये जा रहा था। बाबू जी गड़ागोप पड़े थे। माँ के बारम्बार पूछ-ताछ करने पर भी वह न मुसम्मी का रस लेते थे और न ही कोई दूसरी चीज।

रोगी स्वतः किसी वस्तु को स्वीकार करने में हठ नहीं करता था। प्रायः उसकी आत्मा ही सकुचित हो उठती है—जिसकी वजह से उसकी जुबान सदैव ना-ना ही किया करती है।

माँ सुबह से परेशान थी। आँखें इस वक्त भी भीगी-भीगी लग रही थीं। दुनिया की बहुत-सी बातें मैं भी समझता था। पर, इतना अधिकार नहीं था कि किसी के सम्मुख अपने मन की बात प्रकट कर सकूँ। अनेक बार मैंने सोचा कि माँ को धीरज बँधाऊँ। कोई अप्रकट-शक्ति अकस्मात् मेरा मुँह बन्द कर देती थी। दोपहर बीत चुकी थी। अन्धड़ के बाद की नमी सारे वातावरण पर शनैः-शनैः छाती जा रही थी। बाबू जी को सोये काफी समय बीत चुका था। ऐसे वह प्रायः कम सोते थे। उनका आँख बन्द किये पड़े रहना—अच्छा और बुरा दोनों का ही द्योतक था। मुझे आभास हो रहा था कि बाबू जी शायद आराम में हैं। असलियत कुछ और ही थी। शायद आज वे अपने जीवन के बीते

हुए धुँधले चित्रों को एक-एक कर देख रहे थे। मेरे भीतर देवी-देवताओं का संबल था। सभी देवताओं के आगे गिड़गिड़ा चुका था, इसलिये विश्वास यही था कि बाबू जी चंगे हो जायेंगे। अशुभ सोचने को तो मन ही नहीं करता था।

कभी-कभी रिश्ते के एक मामा माँ से मिलने आ जाया करते थे। यह मुझे आज तक नहीं मालूम हो सका कि किस नाते वह मेरे मामा लगते हैं।

माँ, मामा जी को मुकुन्द कहकर पुकारती थीं। बाबू जी की तबीयत गिरती जा रही थी। अचानक मामा जी का आ जाना संतोष-प्रद रहा। बाबू जी का बदलता चेहरा देख-देख कर मैं अब अपने अन्दर कमजोरी महसूस करने लगा था। मामा जी ने आते ही जब माँ से बाबू जी के सम्बन्ध में कुछ पूछा, तो वे जैसे सोते से जाग गयीं। लाल आँखों से निर्निमेष उन्होंने मामा जी को देखा। आकृति मामा जी की भी विकट-सी लगती थी। बाहरी मन से स्यात् वह माँ को ढाँढ़स बँधा रहे थे। माँ ने कब क्या कहा? नहीं जानता। कुछ देर बाद मामा जी जूते पहिनकर नीचे उतर गए। इस वक्त बाबू जी की घबड़ाहट पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। उन्हें यह तक विदित न हो सका कि मुकुन्द मामा अभी-अभी आये थे और तुरन्त बाहर चले गये।

मैं माँ के बारे में उल्टी-सीधी सोच ही रहा था कि देखा, मुकुन्द मामा एक नये डॉक्टर के साथ कमरे में दाखिल हो रहे हैं। मैं हड़बड़ाकर खड़ा हो गया। सादर डॉक्टर साहब को प्रणाम किया। स्टूल पर बैठ कर डॉक्टर साहब बाबू जी की नब्ज देखने लगे। शायद 'पल्स' मंद पड़ गयी थी। डॉक्टर के निस्तेज मुँह से भी मुझे परेशानी हो रही थी। उन्होंने मामा जी से कहकर बाबू जी की फटी-गंदी कमीज उतरवायी और सिर पर बर्फ की गद्दी रखने के लिए कहा।···बर्फ की गद्दी रखी गयी। चम्मच भरकर दवा पिलायी गयी। लाभ कदाचित् कुछ भी नहीं हुआ।···

'निर्जीव' कह कर डॉक्टर साहब जब आगे बढ़ गए, तो माँ पछाड़ मारकर बाबू जी के निर्जीव-शरीर पर गिर पड़ी। माथे का सिन्दूर मिटाकर हाथ की चूड़ियाँ चटाचट तोड़ने लगी। मामा जी ने तुरन्त उन्हें अलग हटाकर फर्श पर लिटा दिया। खाट पर बिछे चद्दर को पैर से मुँह तक उढ़ा दिया। माँ की भीषण असह्य चीत्कार सुनकर पड़ोसी जन घर में आ गए हुए।

आँखें खोलकर भी मैं बेहोश-सा था। जितना कष्ट बाबू जी के शव को देखकर मुझे हो रहा था, उससे कहीं अधिक-अकल्पनीय तकलीफ माँ के तत्कालीन प्रचंड रूप को निहारकर। पड़ोसिनें माँ को घेर कर बैठी जरूर थीं। पर, कोई उन्हें सान्त्वना नहीं दे पा रहा था। मामा जी समझा-बुझा कर हार चुके थे। दातार बाबू मुझे पकड़े थे और लगातार न रोने की ताकीद दिये जा रहे थे। रोते-रोते थककर कुछ देर के लिए यदि मैं दीर्घ-साँस लेता, तो मुझे दातार बाबू के मुँह से निकली गुड़-आप बात सुनाई पड़ती। वरना, वह क्या बोल रहे हैं, मुझे नहीं मालूम।

तीन घंटे में सब-कुछ समाप्त हो गया। मामा जी श्मशान से दाग देकर घर लौट आये थे। माँ का ऊँचे-स्वर में रोते जाना अभी तक रुक नहीं पाया था।…

दो दिन तक सब ने क्या खाया ? कैसे रात काटी ? नित्य-कार्य से कब निवृत्त हुए ?…कुछ नहीं पता। सर्वप्रथम मेरे सामने गृहस्थी के खर्च का चित्र था। तूफान दो-चार दिन में शान्त हो ही जायगा। मुकुन्द मामा भी महीने भर बाद अपनों-जैसे नहीं रह जायँगे। छोटी-मोटी तनख्वाह पाने वाला हमारी सहायता किस आसरे करेगा ? बिना माँ-मामा से कुछ बोले—मैं रात-दिन यही बात सोचता रहता था। कभी अपने अन्दर अक्षुण्ण-शक्ति का अनुभव करता। जैसे दुनिया मेरे चरणों पर झुकने के लिए तैयार है। फील्ड में नहीं आया था। शायद इसीलिये बरसाती कीड़े दिमाग में रेंगने लगे थे।

बाबू जी को परलोक सिधारे पखवारा बीत चुका था। मामा जी दफ्तर जाने लगे थे। एक बार दबी जबान से उन्होंने माँ से उनके घर चलने का आग्रह किया था। मामा जी की उक्त बात को माँ हमेशा संकोच में टाल देती थीं। एक बार माँ ने मुकुन्द मामा को सोने की अँगूठी बेचने को दी। घर में राशन आदि की व्यवस्था की गयी। जिस दिन बाबू जी का शव जमीन पर पड़ा था, उस दिन भी माँ ने अपने हाथ के छल्ले उतार कर मामा जी के हाथ पर रखे थे। मालूम नहीं वे छल्ले मामा जी ने कितने में बेचे थे। उन्होने उसका हिसाब माँ को आज तक नहीं दिया। शायद अच्छा ही किया—मामा जी ने।

अब माँ के मुँह पर हँसी-खुशी का नामोनिशान नहीं था। प्रातः उठकर नहाती-धोतीं। घंटों ठाकुर जी को स्नान करातीं और देर-सवेर भोजन बनातीं। रात को मेरे लिये दो रोटी सेंक कर रख देतीं। सुबह

बिना किसी से कुछ कहे-सुने रोटियों पर नमक-मिर्च जमाकर प्रेम से खा जाता। यह विचार अक्सर मेरे दिमाग में उठता कि जब मेरी भूख बर्दाश्त के बाहर हो जाती है और मैं परेशान हो जाता हूँ तब माँ क्यों नहीं? वे भी तो आदमी हैं! उन्हें भी तो लगती होगी भूख! ऊल-जलूल अनेक नक्शे एक-एक कर मेरी आँखों के आगे से उतरते जाते! स्थिर-प्रज्ञ हो कभी भी नहीं सोच पाता था मैं। दिन बीतते चले जा रहे थे। बाबू जी की प्रातःस्मरणीय स्मृति धुँधली पड़ती जा रही थी। हिन्दुओं में मरने वालों को दुश्मन नाम से अभिहित किया जाता है। माँ जब मारी-मना होतीं, तो स्व० बाबू जी को बहुत कुछ कह डालतीं। मुझे रहे-रहे क्षोभ होता कि माँ ये क्या कर रही हैं? कहीं बहक तो नहीं गयी हैं? सोच ही सकता था मैं। कह-सुन सकने की हिम्मत कहाँ थी।

अकस्मात् एक दिन डॉक्टर साहब से मुलाकात हो गयी। लाख छिपने की कोशिश करने पर भी मैं बच न सका।

'पिताजी····' ही निकला था, उनके मुँह से कि मेरा निष्प्रभ मुँह नीचे झुक गया। डॉक्टर साहब की अज्ञानता पर मुझे तरस आ रहा था। सिर, प्रायः तभी घुटाया जाता है, जब परिवार में कोई गमी हो जाती है! नगा सिर देखकर भी डॉक्टर यादव अनुमान नहीं लगा सके। मेरे नैनों से अविरल-अश्रु प्रवाहित होने लगे।

—हैंए···कब? डॉक्टर साहब साश्चर्य करुणा उँडेलते हुए बोले।

—एक महीना।···और मैं आगे बढ़ गया।

मेरी उक्त हरकत से डॉक्टर साहब रुष्ट हुए होंगे। अहवादी, अभिमानी, नासमझ—कुछ भी समझा होगा। आखिर, निष्प्रयोजन आगे बात भी क्या करता? सिवाय घाव पर नमक छिड़कने के अतिरिक्त तो कुछ मिलता नहीं। मैं इतना भावुक और संदिग्ध हो गया था कि बाबूजी को सपने में देखकर भी रो पड़ता था। शुरू में अक्सर वे मुझे स्वप्न में दिखाई पड़ते थे। कोई खौफनाक दृश्य!···मेरे कान अगर कु

सुनते, तो केवल यह कि साहस से आगे बढ़ना सीखो। हिम्मत हारना बुझदिली है। दूसरों की कड़वी-खट्टी बातों से मन छोटा मत करना! घंटों इस तरह के चित्र रात को सोते-वक्त मुझे दिखाई पड़ते थे। एक दिन सुबह उठकर रात बीती जब माँ को सुनाने लगा, तो काफी देर तक सिसकती रहीं वे। उस दिन के बाद मैंने निश्चय कर लिया कि फिर कभी माँ को स्वप्न की बात नहीं बताऊँगा। शनैः-शनैः समझ आती जा रही थी। किस बात को कब मुँह से निकालना है—इसका आभास भली-भाँति हो चला था।

*　　　　*　　　　*

स्कूल खुलने वाला था। अन्य लड़कों की तरह अब न तो मुझमें किताब-कापी के लिए जिद्द करने की प्रवृत्ति थी और न गुलगपाड़ा मचाने की! स्वयं किसी चीज की भी फरमाइश नहीं करना चाहता था मैं। मैंने निश्चय कर लिया था कि यदि माँ स्कूल भेज सकने में असमर्थ रहीं, तो घर पर ही पढ़ा करूँगा।....पढ़ूँगा जरूर। बाबू जी के देहावसान के बाद मुहल्ले-टोले वाले मुझे सहानुभूति-मिश्रित नजर से देखते थे। उनका अत्यधिक मोह कभी-कभी मुझे खलने लगता था। बाबू जी स्वल्प-आयु में, निराश्रित छोड़कर, यदि चले गये, तो दोषारोप क्यों? कष्ट ही तो सह रहे थे बेचारे! अच्छा ही तो रहा एक प्रकार से उनका दिवंगत हो जाना। माँ को अलग उनकी गिरती-तबीयत से तकलीफ थी। मरीज को देखकर परिचायक को प्रायः अधिक दुःख होता है। वातावरण घुटा-घुटा सा लगता है। मरीज अच्छा हो जाय या कूच कर जाय—सदा एक तस्वीर बनी रहती है।

बाबू जी बीमार थे तो क्या? स्कूल से वापिस लौटकर थोड़े समय लड़कों के साथ खेल-कूद अवश्य लेना था। खेलना आवश्यक है—इसलिये नहीं! इस कारण कि बिना दौड़े-कूदे मन को राहत नहीं मिलती थी। गुरुजनों का प्रभाव भी अवस्थित था। स्वास्थ्य कायम रहा, तो दुनिया की सारी शक्ति एक तरफ और आदमी की अकेली हस्ती एक तरफ।

ज्ञात न था कि मैं, किसी योग्य नहीं रह गया था। आमदनी का कोई साधन नहीं था। माँ छल्ले-अँगूठियाँ कब तक बेचतीं? सोच-सोच कर पागल हो जाया करता था मैं। तथापि विचार क्रान्तिकारियों-जैसे थे। स्थूल शरीर! चेहरे पर निष्प्रभता! अच्छी तरह समझता था कि भूखा-नंगा रहने वाला व्यक्ति कभी सफल नहीं हो सकता। यह भी नहीं कि केवल निर्धनता के कारण ही मनुष्य अपने ऊर्ध्व विचारों को क्रियान्वित न कर सके? दृढ़निश्चयी व्यक्ति सफलता सभी हस्तगत कर लेता है, जिस दिन वह स्थिर-चित्त से किसी कार्य को संपन्न करने के लिए प्रवृत्त होता है। हृदय में उद्गार अनेक उठते थे। उन्हें निचोड़कर एकाकार नहीं कर पा रहा था मैं।

आशा के विपरीत, एक दिन मामा जी ने माँ के हाथ पर ३०) रुपये रख दिये। माँ अचरज-भरी दृष्टि से एकटक उन्हें देखती रह गयी। उन्होंने पूछा—

—कैसे रुपये हैं ये भैय्या।

—कैसे हुआ करते हैं रुपये। यह तुम पूछ क्यों रही हो? मामा बोले।

—रख लो इन्हें। जरूरत पड़ने पर…, तुम्हीं लोगों का तो सहारा है मुझे।

माँ, फिर रो उठीं। मुकुन्द मामा ने हठात् जब रुपये पुनः माँ के आँचल में डाल दिये, माँ निस्पन्द खड़ी रहीं वे। अनिच्छा से कुछ देर बाद रुपये उन्होंने उठा लिये। कदाचित् कर्ज समझकर।

सुषमा मेरी समवयस्क पड़ोसिन थी। उसकी चाल-ढाल और चितवन में अनुपम जादू था। किसी समय भी यदि उससे आँखें चार हो जातीं, तो अक्सर मैं झेंप जाता और कभी सुषमा। प्रत्येक दृष्टि से उसकी माली-हालत मुझसे हजार-गुना अच्छी थी। पिता बैंक-एजेन्ट थे। भाई ऊँची शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। मैं छठीं में था। सुषमा शायद पाँचवीं की तैयारी कर रही थी। वास्तव में, घर-बाहर यदि, लोगों की सहानुभूति मेरे संग थी, तो केवल संतुलित आचरण के कारण। कुछ तीव्र-कुशाग्र बुद्धि के निमित्त भी! अगल-बगल, फर्स्ट डिवीजन में पास होने वाला शायद ही कोई दूसरा विद्यार्थी था। रईस, चंचल और बेईमान अनेक थे वहाँ। यहाँ तक कि धारा-प्रवाह बोलने में पटु लड़के अवसर आने पर

रट्टू तोता भी कह दिया करते थे मुझे। पढ़ने-लिखने में चाहे जैसा था। हाजिर-जवाबी में मुझ-जैसा असफल लड़का, शायद ही कहीं सुलभ हो सकता था। किसी बात का त्वरित-उत्तर मुझे कभी नहीं सूझा। कुछ देर बाद जरूर दंश-जैसा आघात पहुँचाने वाली बातें, प्रत्युत्तर के लिए कंठ तक आ रुकती थीं। किन्तु उन्हें सुनने वाला अपने तर्कों से विजित कहीं और ही पहुँच चुकता था। सुषमा से कुछ बड़ा—उसका सगा भाई दिनेश मेरे साथ ही कक्षा में पढ़ता था। दिमाग काफी कुंद था उसका। मास्टर जी द्वारा समझाई बात, क्लास के सब लड़के समझ लेते, तब दिनेश ग्राह्य कर पाता था। क्रिकेट, हाकी एवं फुटबाल में उस-जैसा प्रतिद्वंद्वी भी नहीं था क्लास में। उसे मान मिला खिलाड़ी होने के नाते और मैं समादृत था अच्छे विद्यार्थी की हैसियत से! मेरा ज्ञान क्लास तक ही सीमित था। छुट्टी के पश्चात् किसी विद्यार्थी को मुझसे घुल-मिल

जाने की अपेक्षा प्रायः नहीं रखती थी। लौटते वक्त दिनेश मेरे संग रहता। स्वेच्छा से नहीं, अपितु जाने का एक ही मार्ग होने की वजह से। उसकी बातें बुर्जुआ-संस्कार-सम्पन्न होतीं। दुनिया में गरीब, बेरोजगार और असहाय भी रहते हैं, इसकी जानकारी उसे कतई नहीं थी। अपने भीतर अनेक कमियाँ आँकते रहने से, महज उसकी हाँ-में-हाँ मिलानी पड़ती थी मुझे। दिल का इतना साफ था वह कि घर में, सुषमा से उसने मार-पीट क्यों की? आदि बताने संकोच नहीं करता था वह। सुषमा का प्रसंग आ जाता, तो मैं रोमांचित हो उठता था। मन करता कि दिनेश इसी तरह सुषमा के बारे में बोलता रहे। बात मुँह तक आकर भी दिनेश के कान तक नहीं आती थी कि उसे सुषमा के साथ शिष्टता का व्यवहार करना चाहिए।

रोज नहीं, तो सप्ताह में पाँच दिन अवश्य स्कूल से लौटते वक्त, सुषमा बाहर खेलती हुई मुझे मिलती। घर में पुस्तकें रखता, एक-आधी रोटी यदि छींके पर रखी होती, तो उदरस्थ करता और स्वयं सबों के बीच खड़ा हो जाता। बहुत कम खेल ऐसे होते, जिनमें मुझे भी सोत्साह सम्मिलित किया जाता। सुषमा लड़कियों के संग उछलती-कूदती रहती, तो मैं स्वयं को सुषमा समझ लेता। हमारे लड़के मुझे नहीं खिलाते इसकी चिन्ता कभी नहीं हुई मुझे। लड़के सभी असमान थे। न उनका गोरा चेहरा था मेरा और न उन-जैसी मुलायम-मिजाजी! उनके सबके नाम, वीरेन्द्र, राजेन्द्र, अरुण, किशोर, देवानन्द आदि थे, वहीं मेरा पिता-दिया गँवारू नाम था अमर। व्यक्तित्व बनाने में नाम काफी सार्थक होता है। अमर कहकर जब कोई मुझे बुलाता है, तो बहुत अप्रिय लगता! इच्छा होती कि माँ से परामर्श कर नाम बदल डालूँ। फिर, सोचता कि रखा ही क्या है इसमें!…

स्कूल में फीस माफ थी। दस रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति के रूप में भी मिल जाते थे। माँ के हाथ पर रुपये रखता, तो वे प्रसन्न हो जातीं। अच्छा मूड रहता, तो मुझे बहुत-सी नेक सीख देतीं। मुकुन्द मामा

दूसरे-तीसरे आते रहते थे। महीने की तीन-चार तारीख तक तीस रुपये दे जाते थे। परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि न चाहने पर भी माँ ऋण समझ कर रुपये सदा ले लिया करती थीं। चालीस रुपयों से हम लोगों का खर्च किसी तरह चल रहा था। माँ उसमें से भी कुछ-न-कुछ बचा लेती थीं। अब मेरे पास भी दो जोड़ी की जगह तीन जोड़ी-कपड़े हो गये थे। स्कूल में जो वस्त्र पहिनकर जाता, घर लौटकर उन्हें टाँग देता और मैले कपड़े धारण कर लेता था। एक नेकर और एक कमीज दस-पन्द्रह दिन सरलता से चल जाती थी। दिनेश रोज नये-सूट पहिनकर आता था। स्कूल से वापिस लौटते वक्त उसके कपड़े काफी धूल-धूसरित दिखाई पड़ते थे।

एक दिन दिनेश ने बताया कि आज सुषमा की कस के पिटाई हुई। मैंने पूछा—

—क्यों ?

—चोट्टिन है। बाबू जी की जेब से पैसे चुराती है !—वह बोला।

—क्या तुम्हारे बाबू जी ने उसे पैसे चुराते पकड़ा था ?

—हाँ, हाँ। तभी तो मार पड़ी मरी को !

मैं तिरछी नजर से दिनेश के मुँह की तरफ एकटक देखने लगा।

—तुम लोगों को रोज कितने पैसे मिलते हैं ?

—दो आने।···

—लेकिन, तुम तो दो आने से अधिक खरचते हो।

—वह तो जोड़ता जाता हूँ मैं।

नित्य सात-आठ आने व्यय करने के बाद जोड़ते रहने के लिए दिनेश पैसे कैसे एकत्र करता है, इसे समझ सकने की शक्ति मुझमें बिलकुल नहीं थी।

मैं उससे कहना चाहता था कि सुषमा नहीं, तुम चोर हो।···अस्तु।

मुझे रोश था कि दिनेश अपनी सफाई पेश करने के लिए निरपराध सुषमा को पिटवाता है। सुषमा सहिष्णु एवं धैर्य-स्वरूपा थी। सीधी थी

इसलिए सब उसे चोर समझते थे। घर वालों को विश्वास हो गया था कि सुषमा चुराये पैसे स्कूल में खर्च कर आती है। स्वयं बाबू दिनेश के पिता कान के कच्चे थे। चोरी की चर्चा छिड़ती, तो दिनेश स्वयं मुकर जाता और सुषमा को फँसा देता था। सुषमा को बेकार मार पड़ती, तो एलिष्ट शब्द पर मुझे गुस्सा आ जाता था। उनकी अज्ञानता एवं नादानी पर हँसी आती थी मुझे।

स्कूली लड़कों में अक्सर दिनेश उलझ जाता था। एक दिन दो पार्टियों में दंगेबाज़ी हो गयी। मैं किसी दल का भी हिमायती नहीं था। इमली के घने पेड़ के नीचे खड़ा मैं उन लोगों की कुश्तीबाज़ी और नोंक-झोंक देखता रहा। उनकी गुत्थम हाथा-पाई में मुझे अजीब व्यथा महसूस हो रही थी। दिनेश छोटा था! लेकिन उसकी चपलता सीमा पार कर जाती थी। कुछ गाली-गलौज सारा वातावरण विषाक्त कर रहा था। एकाएक दिनेश का सर फट गया और रक्त की धारा मुँह से पैर तक नक्काशी-चिह्न बनाने लगी। सहारा देकर मैंने दिनेश को सम्भाल लिया। चारों तरफ आँधी की तरह खबर पहुँच गयी। निकटस्थ डिस्पेन्सरी से पट्टी बँधवाकर दिनेश को रिक्शे पर बिठाया। घर पहुँचा, तो दिनेश की माँ घबड़ा गयीं। डंडा चलाने वाले पर आक्रोश करने लगीं। संग आये लड़कों से उन्होंने उस शरारती लड़के का नाम-पता पूछा। रामा बाबू (दिनेश के बड़े भाई) ने जब मुझसे पूछा, तो मैंने घटना का आदि-अन्त सच्ची उन्हें बता दिया। उन्हें कदाचित् मन-ही-मन इस बात का क्षोभ हो रहा था, कि दिनेश पर प्रहार करने वाले को मैंने क्यों न कुचल डाला! सुषमा पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई? यह भी मैं भाँपता जा रहा था। वह भी मुझे उखड़ी-उखड़ी दृष्टि से ताक रही थी। उसे कुछ शिकायत थी! बावजूद इसके, मुझ पर कोई असर कारगर नहीं था। अलग खड़ा तमाशा सा देख रहा था मैं। दिनेश के घर वाले कुपित ही नहीं, अनुदार, असहिष्णु तक समझ रहे थे मुझे। उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए मैं बीच-बचाव करता। दिनेश सने मुझे जूतों से ठोकता!

स्वयं सिर फुड़ाकर घर लौट आता।···दिनेश स्वयं कितना पाजी है! मार-पीट में उसका कितना हाथ था? इस पर सोचना किसी को नहीं आता था।

शाम एजेन्ट साहब बैंक से लौटे, तो मुझे पुनः बुलाया गया। कमरे में पैर रखा, तो क्षत्रियों-जैसे आँखें तरेरकर मुझसे कुछ पूछने के लिए हिले वे!

—कौन-कौन पत्थर चला रहा था?

—क्लास के अधिकांश लड़के!

—तुम शामिल थे?

—नहीं।

—लेकिन, तुम तो दिनेश के संग आये थे!

—जी!···ईंट बाजी से मैं काफी दूर था।

—क्यों नहीं साथ रखते दिनेश को।

—बात कब मानता है वह?···कपिल को थप्पड़ न मारता, तो कदाचित् खून-खराबी न होती।

—तुम्हारा क्या कर्तव्य था?

—पहले ही मना चुका था मैं दिनेश को। सैकड़ों बार लड़ाई-झगड़े से अलग रहने को कहा। बात ही कब मानी उसने मेरी।

एजेन्ट साहब उस समय मेरे मुँह से कदाचित् ऐसी बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। वे आज तक दिनेश को समझदार, अनुशासन-प्रिय और होनहार लड़का समझते थे। अकस्मात् मेरे मुँह से विपरीत बात सुनकर उनका क्रोध द्विगुणित हो उठा। एक प्रकार से मुझे ही आक्रामक समझ बैठे। मेरी खरी बातें एजेन्ट साहब को ही नहीं, वरन् घर के हर सदस्य को काँटे-जैसी चुभ रही थीं। सुषमा मुझे शेर-जैसी आँखों से डरा रही थी। मैंने अनुमाना कि सत्य कितना प्रपंची होता है।···झूठ बोलता—दिनेश को निर्दोष साबित करता और बदमाश लड़कों का नाम गिना जाता, तो आज सबके सब प्रसन्न हो जाते! तब शायद, सुषमा मुझे

विशाल-नदी बहरा है न देखो ! आलोक के स्थान पर कुहू-कुहू छैर गयी होगी उसके मुँह पर।

सिर-झुकाए मैं अपने घर वापिस आ गया। माँ ने मुझे उदास देखकर कारण पूछा, तो उन्हीं में मेरे मुँह से एक शब्द न निकला। सारी बातें जब ज्ञात हो गयीं, तो कुछ नहीं कहा उन्होंने। सब-कुछ सुनने के बाद कुछ कह क्यों नहीं रही हैं माँ। मैं बराबर सोचता रहा! तो क्या विनय की मृत्यु-कुशल बनाने में मेरा भी हाथ था ? मस्तिष्क निस्पंद-सा हो गया। किसी बात को भली-भाँति समझ पाने लायक नहीं रह गया।

हैं। उसकी जगह यदि मुझ-जैसा कोई गरीब विद्यार्थी होता, तो कदाचित् इसकी चर्चा तक स्कूल में न छिड़ती।

मानीटरी के लिए मैं नाकाबिल घोषित कर दिया गया। मुझे रंचमात्र भी खेद नहीं रहा इसका। दिनेश की पारस्परिक वैमनस्यता मुझे नीचा दिखाने में कुछ दिन जरूर सफल हुई। अन्तःकरण फिर भी उसका, मेरे साथ था।

चोट का घाव सप्ताह-भर में पुर गया। चपरासी के साथ वह स्कूल आता था। छुट्टी के वक्त भी चपरासी आ जाता और साइकिल में बैठाकर घर ले जाता था। मुझसे, दिनेश से कोई बात नहीं हुई थी। लगता, एजेन्ट साहब और उसकी माँ ने मुझसे बोलने की मनाही करवा दी थी। इन दिनों दिनेश का वास्तविक शत्रु कैलाश नहीं, अपितु मैं था। इतना सब घट चुका था। किन्तु दिनेश में कोई खास परिवर्तन नहीं आने पाया था। वह पूर्ववत् हँसी-मजाक और चपलता का अभिनय करता रहता। अवसर आने पर प्रतिद्वंद्वी कैलाश की बोटी-बोटी अलग करने की आवाज बुलन्द करता।

मैं पहले से ही स्कूल में चुप्पा, असांस्कृतिक एवं अव्यावहारिक नाम से बदनाम था! अब स्वार्थी, दम्भी और अपरोपकारी भी कहलाने लगा था। एक कमी भी घर कर गयी थी। सुषमा के सम्बन्ध में जो बातें मैं किया करता था, वह अब समाप्तप्राय-सी थी! भूल से भी यदि उसकी चर्चा छिड़ती, तो पढ़ाई-लिखाई पर उसका भयंकर प्रभाव पड़ता था। रात किताब खोलकर बैठता, तो कुछ भी मगज में नहीं धँसता था मेरे।

बोल-चाल बंद हो जाने से मेरा उपकार ही हुआ था। अब पुनः मैं परिश्रम करने लगा था। क्लास में पूर्ववत् तेज छात्रों में-से था। किसी विषय में भी मेरा मुकाबिला हम-उम्र शायद ही कोई कर सकता था।

घर पर माँ उदास-उदास-सी रहती थीं। लाख चाहता कि वे स्व० बाबूजी का गम भुला दें! अस्तु।…

घर में आते ही मुकुन्द मामा सर्वप्रथम मेरी पढ़ाई-लिखाई के सम्बन्ध में पूछते ! अनन्तर माँ से इधर-उधर की बातें होतीं ! मैंने देखा कि धीरे-धीरे मुकुन्द मामा में परिवर्तन आता जा रहा है। पहले वे माँ के हाथ पर १०) रखते थे, तो उसे अपने घर में दिया हुआ ही समझते थे। अब सात-आठ तारीख तक रुपये देते, तो हाथ काँप उठते थे उनके ! मानो, अनिच्छा से देने पड़ रहे हों रुपये ! माँ जानती थीं। किन्तु विवशता के आगे क्या करतीं ! मामी को मरे अरसा हो चला था। लोगों के काफी समझाने-बुझाने पर भी मुकुन्द मामा ने ब्याह नहीं किया। एक लड़का था। दुर्भाग्य-वश वह भी चल बसा।···

एक दिन, सायंकाल उदास-चेहरा लिए मामा जी आये। माँ ने पूछा—

—कैसी तबीयत है ?

—कुछ नहीं ! तबादला होने वाला है मेरा।···शायद बरेली जाना पड़े।

थोड़ी देर आश्चर्यान्वित-सी एकटक निहारती रहीं माँ। सम्भलकर, फिर मामा को समझाने लगी।····

अन्तरंग-रूप से मामा को स्थानान्तर का गम नहीं था। प्रसन्नता ही थी शायद। हमारे लिए जो त्याग करना पड़ रहा था उन्हें, उससे छुटकारा जल्दी मिलने वाला था। दुनियादारी के लिए आखिर कितने दिन नाटक खेलते वे।

दिन गुजर रहे थे किसी तरह रो धोकर ! मामा शहर में रहते थे। अतः बाहरी दिखावे के लिए ही सही बीस रुपये प्रतिमास मिल

जाते थे। अब, स्वयं जब, वे यहाँ नहीं रहेंगे, तो चिन्ता भी क्यों होगी उन्हें, हम लोगों की ?

माँ सोच में पड़ गयी थीं। मेरी सुख-शान्ति भी काफूर हो चुकी थी। सातवीं में इस साल यदि फर्स्ट आया, तो मासिक छात्रवृत्ति में ५) रु० की वृद्धि हो जायगी ! १५) रु० से होगा क्या ? किताब-कापियाँ भी तो खरीदनी पड़ेंगी ! दोनों काम उन थोड़े से रुपयों द्वारा कैसे चलेगा ? चौबीस घंटा उथल-पुथल मचती रहती थी मेरे अन्तःकरण में !····

जिसकी कतई आशा नहीं थी; बरेली जाने के बाद भी मामा मनीआर्डर से हर महीने ३०) रु० भेजते जा रहे थे। पोस्टमैन से उक्त रुपये लेते, पता नहीं क्यों हिचक लगती थी ? अहं जाग उठता था मेरा। अन्दर से कोई धिक्कारता था। समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूँ। जो माँ किसी तरह वक्त काट रही थीं—घाव गहरे होते जा रहे थे अनुदिन ! आँसुओं की त्रिवेणी, खाने-पीने की अनियमितता पुनः चालू हो गयी थी। आशंका होती, कि कहीं बीच में ही न ठप्प कर देनी पड़े मुझे अपनी कीमती पढ़ाई ! हमें खिलाने का, कोई ठेका तो ले नहीं रखा था मामा जी ने। आदमी खड़ा-खड़ा कब बैठ जायगा ? जब इसका ही निश्चय नहीं, तो विश्वास किया ही क्यों जाय किसी का ?···

अक्सर सोचता—

विमल भी तो मुझ जैसा अभागा युवक है। स्कूल के बाद रोज सीधे माधो बाबू की दुकान जाता है। ३०-४०) रु० कमाता है। अखबार बाँटने का काम तो मैं भी कर सकता हूँ। कितने ही लड़के अखबार बाँट कर, ट्यूशन करके और रिक्शा खींचकर घर-भर का पेट पालते हैं। आखिर, मैं चुप क्यों हूँ ? सोचने-मात्र से काम नहीं चलेगा। कुछ करना है, कुछ करना है—एक धुन-सी लग गयी थी। माँ की राय भी अनुचित लगी—इस बारे में मुझे।

दूसरे दिन स्कूल पहुँचा, तो सर्वप्रथम विमल से मिला। मुँह तक

आगे बात नहीं निकली। अचानक, मेरे मेल-जोल बढ़ाने से उसे भी कम विस्मय न हुआ होगा। हाफ टाइम में क्लास से बाहर आते ही मैं विमल से सट हो लिया। बड़ी कोशिश के बाद मैंने प्रसंग छेड़ा—

—तुमसे क्या छिपाऊँ विमल। आजकल बहुत परेशान हूँ। बाबू जी की आकस्मिक मृत्यु से घर-गृहस्थी का सारा दायित्व मुझ पर आ पड़ा है। अभी तक दोनों समय किसी प्रकार रोटियाँ मिलती रहीं। मेरा काहिलपन, कि अपाहिजों-जैसा बैठा रहा। किसी ने, आज जैसे, मुझे सोते-से जगा दिया है। महज कर्तव्यों ने अवगत करवा दिया है। तुम्हें अपना समझ कर राय लेने आया हूँ।

—मैं कुछ समझा नहीं अमर!···क्या तुम भी ?···और, उसका कंठ अचानक बन्द हो गया।

—हूँ!···मैं भी रिक्शा चलाऊँगा!···

—लेकिन, एक बार अच्छी तरह सोच लो।···

—क्या ?···किसलिए सोच लूँ।···

—आज तक—सदैव फर्स्ट आते हो। मेरी तरह रिक्शा-मैन बन कर बैठे रहोगे ? भविष्य की चिन्ता नहीं रही—क्या अब तुम्हें !

—वर्तमान, अगर बरबाद हो रहा हो, तो भीतर भविष्य की कल्पना कहाँ तक उचित है विमल ?···

—अच्छा ! ठीक है।···सब समझ गया मैं। कितना परिवर्तनशील है यह संसार ! ईश्वर तो सब है ही। स्कूल से छूटते ही आज तुम मेरे साथ ही लेना। मालिक अपना परिचित है। मुझे विश्वास है कि वह तुम्हें भी मेरे रेट पर रिक्शा खींचने की अनुमति दे देगा।

विमल की सहायता से, प्रथम दिन तो मैंने रिक्शा खींचना सीखा। दूसरे दिन थोड़ी तकलीफ महसूस हुई। तदनन्तर, धीरे-धीरे साधारण रिक्शा-चालक बन गया।

रात से वापिस आने में रोज देर हो जाती थी। माँ कई बार पूछ चुकी थीं। कुछ बताना नहीं चाहता था। अतएव उनकी स

सहर्ष सुन लेता। थका-मांदा घर आता। माँ के मुँह से अनर्गल फटकार सुनकर अक्सर रोने को जी चाहता। पुनः सोचता कि माँ के आगे रो-गाकर ही क्या होगा?···

एक दिन माँ का क्रोध पराकाष्ठा पर पहुँच गया। सब-कुछ खोल देना चाहता था मैं। अनिच्छा से किसी तरह सारी बात उन्हें बता दी। तब तक ग्यारह रुपये कमा चुका था। थूक निकलते हुए मैंने उक्त रुपये हाफ-पैन्ट की जेब से बाहर निकाले। और माँ के हाथ पर रख दिये। रुपये क्या दिये, कि उनकी आँखों से झर-झर आँसू निकलने लगे।

—इसमें रोने की तो कोई बात नहीं है माँ! परिस्थिति से जूझा प्रत्येक कार्य अच्छा होता है। हमीं नहीं हैं। करोड़ों की जिन्दगी इसी तरह बीत रही है आज!

माँ के बार-बार विरोध करने पर भी मैं अपने रास्ते से नहीं हटा। जब से रिक्शा चलाना शुरू किया, मेरा शरीर आधा हो गया था। अब मेरी खुराक दुगुनी से भी कुछ अधिक हो गयी थी। शरीर फिर भी पहले-जैसा था। रात देर से रिक्शा खींचकर आता और रूखा-सूखा पेट में डालकर घोड़े बेचकर सो रहता। सुबह सारा बदन टूटता रहता! न नहाने की इच्छा करती और न ही पुस्तकें पढ़ने की। जो सबक एक बार पढ़ लेने से कंठस्थ हो जाता था, वहीं अब लाख माथा-पच्ची करने के बाद भी दिमाग में नहीं घुसता था। क्लास में सबको विदित हो गया था कि अमर शाम से रात रिक्शा चलाता है। कुछ अध्यापकों को मेरे साथ हमदर्दी थी! कुछ मेरे निकृष्ट पेशे से नाराज हो गए थे। रिक्शा विमल भी चलाता था। पर, उसका इतना दबदबा था कि उसे पीठ-पीछे कोई कुछ नहीं कह पाता था।

संयोगात् एक दिन रात को प्रिन्सिपल साहब रिक्शा मिलने की बाँट जोह रहे थे। दूर से ओ रिक्शा कहकर उन्होंने पुकारा। स्वर पहिचान-कर मैंने तुरन्त रिक्शा आगे खड़ा कर दिया। काफी गंभीर-मुद्रा में थे उस दिन प्रिन्सिपल साहब। रिक्शे पर चढ़ने के बाद भी वे मुझे नहीं पहिचान सके। मैंने पूछा—

—कहाँ ले चलूँ रिक्शा।

शायद उनके होश दुरुस्त हो चुके थे। उन्होंने मेरा नाम जोर से पुकारा। मैं बिना कुछ कहे गद्दी पर बैठा रहा।''''

—सुना तो था कि तुम रिक्शा भी चलाते हो। पर, प्रत्यक्ष कभी नहीं देखा था। वे कुछ रुआँसे-से हो गए। मैंने अनुभव किया कि मेरा नुकसान तो हो ही रहा है। प्रिन्सिपल साहब भी भारी धर्म-संकट में फँस गए हैं।

उन्होंने मुझसे बहुत-से प्रश्न किये। कुछ के उत्तर दिये मैंने और कहीं-कहीं सिर हिला दिया। प्रिन्सिपल साहब मेरे रिक्शे से उतर आये थे। बटुवा खोलकर दस-दस के दो नोट मुझे पकड़ा दिये! मैं साश्रु उनकी चप्पलों की ओर एकटक निहारता रहा! मैं रोक नहीं पा रहा था-अपने को। किसी प्रकार नोट जेब में रख, मैं रिक्शा-मालिक की दुकान पहुँचा। मालिक, समय से पूर्व देखकर आश्चर्य करने लगा!

—बहुत जल्दी है क्या आज?

—नहीं···सिर, कुछ भारी है! इतना कहते ही डेढ़ रुपये उसकी हथेली पर रख दिये मैंने। मालिक ने कदाचित् यह पूछना भी उचित नहीं समझा कि आज रुपये कहाँ से दे रहा हूँ मैं उसे? डेढ़ घंटे में क्या तो मैंने कमाया और कैसे पूरा रुपया जमा कर रहा हूँ? उचाट मन से घर का रास्ता नापने लगा। प्रिन्सिपल साहब से साक्षात् होने के बाद वस्तुतः मेरी तबीयत खराब हो गयी थी। अन्दर-ही-अन्दर हरारत-सी महसूस हो रही थी। माँ ने तबीयत के बारे में पूछा, तो थकी-ज़ुबान से सब-कुछ बता दिया मैंने। खा, एक कौर भी नहीं सका उस दिन। जाते···जाते उन्होंने, घर पर मिल लेने का आग्रह क्यों किया है?···

स्कूल एक सप्ताह के लिए बन्द था। प्रिन्सिपल साहब के कथनानुसार ठीक समय पर मैं उनके निवास-स्थान पर पहुँच गया। रास्ते-भर तरह-तरह के विचार साँप की भाँति मेरे दिमाग में रेंग रहे थे। एकाएक दिनेश मेरे सामने आ गया। उस दिन प्रिन्सिपल साहब की धारणा कैसी रही होगी; जब दिनेश का सिर फट गया था और मुझसे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की बातें कर रहे थे! क्या मैं दोषी नहीं समझा गया था, उस

दिन उनकी निगाह में ! बातें बहुत-सी सोचता जा रहा था। पर, किसी घटना का भी आदि-अंत नहीं याद रह गया था।

निश्चित रूप से मुझे प्रिन्सिपल साहब के मकान का पता नहीं मालूम था। ठीक उनके घर तक पहुँचने के बाद जब मैं आगे बढ़ गया, तो दूसरों से ठिकाना पूछने पर झेंप लगी। दरवाजे के बाहर खड़ा हो गया। समझ नहीं पा रहा था कि उन्हें क्या कहकर पुकारूँ ? क्या कोई छोटा बच्चा नहीं है यहाँ—बार-बार यह बात मेरे दिमाग में चक्कर काट रही थी। समय सुबह का था। अभी वह कहीं नहीं गए होंगे, इसकी निश्चिंतता थी मुझे। काफी देर हो गयी थी।—'प्रिन्सिपल साहब' अकस्मात् मेरे मुँह से निकल गया। थोड़ी देर में उनकी पत्नी बाहर आ गयीं। वे मुझसे कुछ पूछने ही जा रही थीं कि प्रिन्सिपल साहब स्वतः उपस्थित हो गए।

संकेत से उन्होंने मुझे भीतर बुला लिया। उनकी आवाज से लगा, मानों वे कुछ अस्वस्थ हैं ! झिझकते-झिझकते मैं सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया। करीब पाँच मिनट तक वे अखबार पढ़ते रहे। तत्पश्चात् पूछने लगे—

—आजकल तुम्हारा खर्चा कैसे चलता है ?

—जी !···कैसे बताऊँ ? माँ दोनों जून कैसे रोटी सेकती हैं, मैं आज तक नहीं समझ सका। रिक्शा तो गत सप्ताह से चलाना शुरू किया है।

—इस बारे में तुमने अपनी माँ से कुछ पूछा नहीं।

—पूछा क्यों नहीं ! किन्तु उन्होंने कभी संगत उत्तर नहीं दिया।

—क्या तुम्हारे रिश्तेदार भी हैं ?

—एक मामा थे। ट्रांसफर होकर अब बरेली चले गए हैं।

—वे कुछ सहायता नहीं करते तुम्हारी।

—अभी तक उन्हीं की स्वल्प सहायता से घर का काम, लर

पश्चम चल जाता था। अब सम्भवतः उक्त सहायता से भी हम लोगों को वंचित हो जाना पड़े।

—क्यों ?···

—इसलिए कि रिश्तेदार कभी किसी की निस्वार्थ सेवा नहीं करना चाहता। आज मामा जी यदि कुछ रुपये प्रतिमास माँ के हाथ पर रख देते हैं, तो उसके पीछे भी चाल है।

—तुम्हें संदेह क्यों हो रहा है ?

—आकृति और कृत्रिम व्यवहारों को पहचान कर।

फिर, और कुछ न कहकर प्रिंसिपल साहब ने प्रसंग बदल दिया।

—तुम्हारे पिता रेलवे में काम करते थे।

—जी !

—कितने साल काम किया होगा।

—मेरे ख्याल से १५-१६ वर्ष तो जरूर हो गये होंगे।

—तब तो उनका फण्ड भी जमा होगा।···

सैकड़ों, इसी तरह की बातें होती रहीं। मैं समझ नहीं पा रहा था कि प्रिंसिपल साहब ने किसलिये यहाँ बुलाया है। क्या इस वास्ते बुलाया गया हूँ कि प्रिंसिपल साहब भी हर मास कुछ दे दिया करें, जैसा कि मुकुन्द मामा दे देते थे। अन्तर ही क्या रहा फिर ! रुपया न लेने के लिए ही तो रिक्शा चलाने के लिए विवश होना पड़ा। निश्चय क्या इतनी जल्दी बदल डालना चाहिए। इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि यदि प्रिंसिपल साहब मुझे कोई ऊपरी काम दिला देंगे, तो सहर्ष स्वीकार कर लूंगा। उनकी आर्थिक कृपा तो मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। पांच मिनट के अन्दर असंख्य चित्र दिमाग में दौड़ गए।

पुनः प्रिंसिपल साहब मेरी तरफ मुखातिब हुए, तो मैं प्रायः चौंक-सा गया।···

—ऐसा क्यों नहीं करते अमर।···तुम और माँ दोनों मेरे घर चले आओ।

प्रत्युत्तर में एक शब्द भी मेरे मुँह से नहीं निकला।

—तुम्हें पसन्द नहीं।···

—मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? माँ कदाचित् आपके प्रस्ताव से सहमत न हों।

—माँ से पूछो न पहले। वह नहीं मानेंगी, तो आगे सोचा जायगा। और क्या सोचने लगे तुम?

—यही कि माँ···

प्रिंसिपल साहब विवर्ण-से हो गए। शायद मेरी बात लग गयी उन्हें।

अनन्तर प्रस्थान कर गया। माँ से इतनी बातें कैसे होंगी? कुछ समझ नहीं पा रहा था। उनके स्वभाव से जितना परिचित था, उसमें स्पष्ट था कि वे परमुखापेक्षी होना कभी नहीं चाहेंगी। जिस क्षण मेरे मुँह से ऐसा सुनेंगी, उस समय कदाचित् उन्हें अपनी बुढ़ौती की भी आशा नहीं रह जायेगी। घर पहुँचने से पूर्व ही मैंने निश्चय कर लिया कि बिना माँ के परामर्श किये मैं प्रिंसिपल साहब को नकारात्मक उत्तर ही दूँगा। उनके उक्त एहसान को आजन्म भुला नहीं सकूँगा। इतना ख्याल रखने वाले आदमी भी कम होते हैं।···



नित्य, निःशंक सिर ऊँचा करके स्कूल जाता था। शनैः-शनैः अपने में कुछ परिवर्तन देख रहा था। विमल को छोड़कर और किसी से बातें करना अरुचिकर लगता था मुझे। प्रिन्सिपल साहब (डॉ० खन्ना) से मिले एक सप्ताह से कुछ अधिक हो चला था। उनसे मिलने का वचन दे चुका था। जब यह निश्चय कर लिया कि हम लोगों को, उनका कोई प्रस्ताव नहीं मानना है, तो उनके घर की तरफ कदम कैसे मुड़ते? माँ से तो नहीं; किसी अन्य से जरूर इस सम्बन्ध में परामर्श कर लेना चाहता था। विमल को उपयुक्त समझकर मैंने सारी बातें उसे बता दीं। भूल से मैं विमल को साधारण साथी ही समझता था। बात करने पर मुझे उसके ऊँचे निखरे व्यक्तित्व के आगे झुकना पड़ा। महान् श्रद्धा उमड़ पड़ी उसके प्रति।

प्रसंगात् जब वह अपनी बीती सुनाने लगा, तो थोड़ी देर के लिए मैं स्तब्ध रह गया! मेरी माँ जीवित हैं। विमल का तो कोई नाम-लेवा रिश्तेदार तक नहीं है इस दीन दुनिया में। कितना साहसी है! हाथ से भोजन बनाना! स्वयं कमाना और जीविका चलाना। आसान काम कतई नहीं। उससे बात-चीत कर मुझे अपने दृढ़-निश्चय पर टिके रहने का सहारा मिला।

रिक्शा-मालिक से मिलकर पुनः मैंने काम शुरू कर दिया। जितनी झेंप पहले दिन रिक्शा खींचने में मुझे नहीं लगी थी, उससे अधिक आज प्रतीत हो रही थी। यद्यपि यह दृढ़-निश्चय था कि अब मैं किसी के बहकावे में नहीं आऊँगा। मन जो कहेगा, वही करूँगा और उसी की प्रेरणा से अपने रास्ते के मोड़ बनाता रहूँगा। दिनचर्या पूर्ववत् चलती

रही। एक खुटका बराबर यही बना रहता था कि प्रिन्सिपल साहब क्या सोच रहे होंगे मेरे प्रति। रात रिक्शा सौंपकर वापस लौटने लगा, तो अनायास मेरे पैर प्रिन्सिपल साहब के घर की ओर मुड़ गए। घर के समीप पहुँचा ही था कि प्रिन्सिपल साहब से बिना प्रतीक्षा किये मुलाकात हो गयी।

मैंने सादर दोनों हाथ जोड़ दिये।

'नमस्ते' से उन्होंने उत्तर दिया।

अनुमान द्वारा कदाचित् उन्हें मेरे संकल्प का आशय ज्ञात हो गया था। अपराधी की तरह मैं नतमस्तक खड़ा रहा।

—तुम क्या कहने आये हो अमर! निःसंकोच कहो। कदाचित् तुम्हारी माता जी को मेरा सुझाव पसन्द नहीं आया।

—जी!···

—कोई बात नहीं। मैंने तो कुछ समझकर तुम्हें अपने पास बुलाया था। पढ़ने-लिखने में तुम कुशल हो! मुझे भय है कि जबर्दस्त शारीरिक परिश्रम से कहीं तुम्हें हानि न उठानी पड़े।···यह मत समझो कि तुम्हारे साहस से मुझे प्रसन्नता नहीं होती! मेरी मंगल कामना है कि जहाँ तुम अपनी पारिवारिक स्थिति सुदृढ़ करने में कामयाब हो, वहाँ, अपनी शिक्षा-दीक्षा के प्रति भी सजग।····अभी कुछ खाया, तो न होगा तुमने। और, मेरे काफी टाल-मटूल के बाद भी उन्होंने नाश्ता करा ही दिया।

समाज से यह बात नहीं छिप सकी कि अमर रिक्शा चलाता है। दिनेश को काफी पहले इसकी जानकारी हो गयी थी। प्रायः सुषमा के सामने जिस प्रकार मैं सोल्लास खड़ा हो जाता था, अब छाया मात्र से मुझे परहेज हो गया था। दूर से दिखाई पड़ जाती, तो मैं फौरन चक्कर काट जाता अथवा सुषमा की आँखों में धूल झोंककर मकान की देहलीज लाँघ जाता। उसकी आकृति, मेरे लिए जितनी प्रेरणादायक और आनन्दप्रद थी, अब नितान्त क्लेशमूलक बन गयी थी। शुरू में, यह विचार कभी नहीं उठा था मेरे मन में, कि सुषमा

है। उसे देखने-समझाने का अधिकार मुझ फकीर को नहीं, अपितु उसकी बराबरी के किसी शाहबजादे को है ! उसके बारे में सोच-सोचकर अक्सर मेरा सिर भारी हो जाता था ! मुझे रिक्शा-चालक जानकर वह क्या सोचती होगी ? पश्चात्ताप की अग्नि से कहीं वह तो नहीं झुलस रही ! जिस तरह मैं उससे परिचय बढ़ाने की भूल महसूस कर रहा था, उसी भाँति क्या उसे न मालूम पड़ता होगा ? दिनेश ने कैसी-कैसी बातें फैला रखी हैं ? एजेन्ट साहब तो मुझे पक्का उचक्का-बदमाश समझते होंगे। अकस्मात् उनसे, मेरा अगर साक्षात् हो जाता, तो कुली-मजदूर से कम नहीं समझते थे ! कितनी चोट लगती थी तब मुझे ! आँसू छलछला पड़ते थे ! कितने निर्दय, दम्भी और असहिष्णु होते हैं पैसे वाले। लगातार यह विचार मेरे मस्तिष्क में चक्कर काटता रहता था। दुनिया की समस्त शासन-प्रणालियाँ चल-चित्र की भाँति एक-के-बाद-एक उतरती जातीं ! कभी समाजवाद के सिद्धान्त उपादेय-से प्रतीत होते और कभी साम्यवाद के ! उसाँसें उठतीं। तर्क आते-जाते। रंग-रूप जाति-पाँति के बाबत ख्याल खौलते ! गरीब ८ घंटा जी-तोड़ श्रम करता है, तो उसे भी तो समान सुख-दुःख का अधिकार है। अभिमान करने, छोटों को हीन समझने और अट्टहास करने वालों का सामूहिक बहिष्कार होना चाहिए।

सुषमा पर लुब्ध होने की मैंने भारी भूल की है, इसकी गवाही न मेरा सुप्त चेतन मन देता था और न ही बदला समय ! मुझे सुषमा से बात-चीत करने के अनेक अवसर प्राप्त हुए हैं। पहले कभी मैं इसका अनुमान भी नहीं लगा सका था कि सुषमा मेरी वर्तमान हालत को देखकर नफरत भी करने लगेगी ! साधारणतः उसके विचार मेरे विचार से मेल खाते थे। बात-ही-बात में एक दिन उसने कहा था—जो लड़के अच्छे साफ कपड़े पहने रहते हैं, यदि उन्हें ही अच्छा समझ लिया जाय, तो भावुकपन की बात होगी ! क्या अर्थ हो सकता है इसका ?···पहचान भी तो, आदमी के व्यक्तित्व से होती है ! यदि सुषमा में स्थायित्व नहीं,

इसका पहले वाली बदरी-मात्र है, तब शायद मैं भूल कर सकता हूँ ! अन्यथा, व्यर्थ संदेहों की पर्त अन्तर में नहीं जमने देना चाहिए ।

अभी तक स्कूल में दसवीं क्लास तक की ही पढ़ाई होती थी । प्रिन्सिपल साहब के अथक परिश्रम एवं लगनशीलता के कारण विद्यालय इंटर कालेज के रूप में परिणत हो गया ! सोचता था कि हाईस्कूल पास कर ही लूंगा ! बाद में क्या होगा ?...निश्चय-सा था कि प्रिन्सिपल साहब की कृपा-सम्वेदना के रहते, मैं इंटर भी कर लूँगा ।...स्व० बाबूजी की एक बात के सिवा और सभी बातें मुझे हल्की नजर आती थीं । रो-गाकर किसी तरह मुझे बी० ए० करना है । उक्त लक्ष्य तक बढ़ने का मैं दृढ़-निश्चय कर चुका था । संघर्ष झेलकर एक दिन जरूर मैं परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर लूंगा । पूर्ण विश्वास-सा था इसका ।

विमल एकमात्र साथी रह गया था मेरा । ऐसा नहीं कि उसके अतिरिक्त और कोई मुझे दोस्त या हमदर्द समझने के लिए रजामंद न था । यह जरूर था कि विमल से मिलकर जितना आन्तरिक संतोष और उठाए कदमों को अग्रसर करते रहने का संबल मिलता था, उतना अन्यत्र नहीं ।

विमल की बहुत-सी बातें मुझे बुरी भी लगती थीं । मजाक में अक्सर मजनू आदि की संज्ञा दे देता था ! संदेह होता कि विमल क्या समझकर ऐसा भद्दा शब्द इस्तेमाल करता है । मेरे मन में चोर था, इसलिए हवा की तरह उसकी मुँहफट्टी प्रसंग बदलकर उड़ा दिया करता था । किसी छोटी-सी बात के कारण मुझे उद्विग्न रहना पड़े, इसका भी खेद मालूम था ! उस सम्बन्ध में साहस करके कुछ पूछना चाहता था, कि आखिर, वह किस आधार पर मुझे मजनूँ समझता-कहता है ? क्या देखा है उसने मेरे अन्दर ? लेकिन बलात् कोई आन्तरिक-शक्ति मुझे रोक देती थी । आज तक जो सोचा, वही किया ! विमल की एक बात मेरे मुँह पर ताला क्यों लगा रही है ? धुँआ एक दिन विस्फोट कर ही बैठा । कुछ आवेश और थोड़े संयम से मैंने विमल से पूछ ही लिया—

—साफ कहो ! क्या तुम मेरे भीतर किसी कमजोरी का अनुभव करते हो ?

—कोई भी तो नहीं। लेकिन पहले यह बताओ कि तुम्हें हो क्या गया है ?

—नहीं विमल !···आज तुम्हें सच-सच बताना पड़ेगा !

—इतनी बहकी बातें क्यों कर रहे हो ? अपनी समझ से तो मैंने कभी कोई ऐसी बात नहीं कही, जिससे तुम कमजोरी का अहसास कर सको। तुम्हीं बताओ। अकारण कौन-सी गलती कर बैठा मैं।

—भूल गए तुम ! अक्सर मजनूं-मजनूं कहते रहते हो। उसी का आशय जानना चाहता हूं।

हा-हा-हा।···जोर से हंसा विमल ! अब समझा !···भई वाह ! तुम भी खूब पकड़ते हो शब्द। मजनूं ने लैला के लिए क्या नहीं किया ? एक संकल्प, एक लगन थी—उसके अन्दर। लक्ष्य-सिद्धि के लिए ! विजय-श्री अन्त में मिली थी कि नहीं ? क्या तुम्हें अपनी जीत की आशा नहीं।

—माफ करना भाई ! मैं तो कुछ और ही समझ बैठा।

—ओह मुझे भी तो बताओ !

—बताने लायक नहीं है विमल ! अनुरोध है कि इस सम्बन्ध में, कभी कुछ मत पूछा-कहा करो।

अंतिम शब्द जो विमल के मुंह से निःसृत हुआ, उसका अर्थ कदाचित् यही था कि रिक्शा-चालक बनकर भी मैं, उसकी भाषा, व्यवहार और हंसी-मजाक से परिचित नहीं हो सका !

काफी झेंप चुका था। जल्दी-ही उससे रुखसत लेकर घर की तरफ मुड़ गया। झुंझलाहट के साथ मेरे अन्दर जो एक संतोष था, वह यही कि सुषमा मुझ तक ही सीमित है।

अनवरत जूझना पड़ता है। कितनी ही बार पैर उखड़ जाते हैं। निराशा, अतृप्ति और असंतोष का अनुभव होता है। परिचित उसे पागल, सनकी, खब्ती आदि संज्ञाओं से अभिहित करते हैं। फिर भी दृढ़-निश्चयी निर्भीक व्यक्ति आगे बढ़ता जाता है।···इन संदर्भों के साथ मैं यह भी विचारता रहा, रहन-सहन के वर्तमान-स्तर को बदलने एवं उच्च-डिग्री हासिल करने का सिद्धांत भी अनिवार्य विषय जैसा है। अनेक उलझनों में पड़ जाता।···बड़े उद्देश्य उनके आगे वस्तुतः कुछ नहीं हैं, जो कठिनाइयों को रास्ते को पगडण्डी समझते हैं। मेरी खाली एक माँ हैं। गम जोंक की तरह उन्हें चूसे जा रहा है। उनके अधिक समय जीवित रहने की कतई उम्मीद नहीं है मुझे। हाँ, इसका पूर्ण विश्वास है कि उनकी मृत-आत्मा कभी मेरा साथ नहीं छोड़ेगी, अपने स्नेह और आशीर्वाद से निरन्तर मेरा पथ प्रशस्त करती रहेगी !···

रिक्शा-खिंचाई के संग पढ़ाई भी चल रही थी मेरी ! फर्स्ट आने का ख्वाब अब कम दिखाई पड़ता था। रात थका-माँदा आता तो माँ थाली परस कर सामने रख देतीं। खा सब लेता। लेकिन अनिच्छापूर्वक। चार रोटी और थोड़ा-सा चावल ही सुअवसर हो पाता था मुझे। ऐसे दिन कम नसीब हो पाते थे, जिस दिन भोजन के संग मुझे चटनी-अचार के दर्शन भी हो पाते हों। मुकुन्द मामा के प्रेषित रुपये अब लौटा देती थी माँ। बरेली पहुँच कर पहली बार जब उन्होंने ३०) रुपए मनी-आर्डर द्वारा भेजे, तो माँ ने पोस्टमैन को वापिस कर दिये। सप्ताह के भीतर माँ के नाम मामा जी का पत्र आया। लिखा था कि काफी नाराज हैं वह रुपये वापिस करने से। माँ को ऐसी आशा यद्यपि नहीं थी, फलतः दिल कचोट-कचोट उठता था उनका। मामा का विगत अहसान वे बनावटी समझने लगीं। मेरी समझ में भी यह बात नहीं आ रही थी कि रुपये वापिस करने पर मामा इस कदर नाराज क्यों हो गये ? आज नहीं तो कल, एक-न-एक दिन तो उनसे इंकार करना ही पड़ता। फिर वे इतने आग-बबूला क्यों ?···अचानक मेरे मस्तिष्क का

संतुलन भी बिगड़ गया। प्रकृतिस्थ होने पर यही निश्चय कर पाया कि मामा जी का क्रोध करना उचित है। हमें उनके क्रोध का भी आदर करना चाहिये।

नवीं में भी प्रथम आया हूँ, यह सुनकर मुझे अत्यधिक विस्मय हुआ। वस्तुतः मैंने अधिक परिश्रम नहीं किया था। फेल होने की आशंका नहीं थी, तो फर्स्ट आने की भी कोई संभावना नहीं थी। आठवीं तक मेरे प्रथम आने पर किसी को आश्चर्य-कौतूहल नहीं हुआ था। इस बार मैं सबकी चर्चा का विषय बन गया था। दिनेश को ईर्ष्या इसलिये हो रही थी, क्योंकि वह अनुत्तीर्ण हो गया था। मेरे फर्स्ट आने पर लोग क्या-क्या सोच रहे है ? इसकी मुझे चिन्ता नहीं थी। सुषमा पर मेरे पास होने का क्या असर पड़ा है ? इसे जानने को मैं जरूर बेचैन था। रेजल्ट कार्ड लेकर जब मैं घर आ रहा था, तो ईश्वर से यही प्रार्थना करता जाता था कि यदि अकस्मात् सुषमा के दर्शन हो जाये, तो कितना संतोष मिले। दिनेश को पास होने की पूरी उम्मीद थी। फेल हो जाने से उन पर तो कुछ नहीं हाँ, एजेन्ट साहब पर जरूर भयंकर प्रतिक्रिया हुई होगी। वे बार-बार यही कहते-सोचते होंगे कि दिनेश को दो-दो ट्यूटर घर पढ़ाने आते रहे, फिर भी वह फेल हो गया। अमर, जो रिक्शा खींचने के साथ अपनी पढ़ाई भी जारी रखे रहा, वह फर्स्ट पोजीशन मे उत्तीर्ण !...

सदा नहीं, तो कभी-कभी ईश्वर जरूर मन की मुराद पूरी कर देता है। उलझन में हुआ, घर तक आया, तो सुषमा को गम्भीर-मुद्रा में निष्प्रभ खड़ा देखकर स्वयं विवर्ण-सा हो गया। एकबारगी उसकी नजर से मेरी नजर टकरा गयी। मेरा ख्याल था कि स्यात् सुषमा मुँह फेर लेगी। पर हुआ उल्टा। स्नेहिल-दृष्टि से सुषमा ने मुझे ऐसे देखा, जैसे कोई बहुत बड़ा अपराध किया हो उसने और उसके प्रायश्चित्त का मार्ग खोज रही है। उससे बोले, बहुत दिन हो गए थे। इच्छा हो रही थी कि मिलकर जी हलका कर लूँ। समय अनुपयुक्त समझ कर मैं हठात् घर की देहली लाँघ गया। माँ ने प्यार से मुझे देखा और आकण्ठ डूबी-यान जैसे पी गयी।

मुहल्ले भर में धूम मच गयी थी कि मैं फर्स्ट पोजीशन में उत्तीर्ण हो गया हूँ। दो-चार हिम्मत करके मुझसे मिले भी ! क्या तो कहता उनसे। शील-संकोच से ही उनका अभिनन्दन करता रहा। एकाएक माँ ने दिनेश की चर्चा छेड़ दी—

—दिनेश पढ़ने में कमजोर है क्या ?

—हूँ !...हाँ।

—उसे तो घर पर भी मास्टर पढ़ाते हैं ? किताबें भी सब होंगी।

—इससे क्या ? वह इसलिये कहाँ पढ़ता है कि उसे पास होना है ? केवल दिखाने के लिए स्कूल जाता और घर में मास्टरों से पढ़ता है ? हफ्ते में दो दिन स्कूल नहीं जाता ? अक्सर झूठा बहाना बनाकर भाग जाता है। तुम्हीं बताओ। फिर कैसे पास हो ? पढ़ता उतनी देर के लिए, जितने समय तक घर-स्कूल अध्यापक तैनात रहते हैं ? अनन्तर, भाड़ में जाय, पढ़ाई और लिखाई।...

विमल आया था ; प्रसन्न-मुद्रा में उससे मिलने के लिए उठा। उसका हाथ पकड़ कर भीतर आया, तो माँ से सर्वप्रथम प्रणाम किया उसके। विमल काफी हिलमिल गया था माँ से। वह पोजीशन से तो पास नहीं हुआ था। तरक्की (Promotion) मात्र से उसे संतोष था। आज उसे मैं कुछ-न-कुछ जरूर खिलाना-पिलाना चाहता था। बाजार से कुछ मिठाई और बर्फ-चीनी खरीद लाया। माँ ने पेट भर शर्बत पिलाया। हम दोनों के आग्रह से एक टुकड़ी मिठाई और आधा गिलास शर्बत उन्होंने भी पी लिया। मूड अच्छा था। विमल का प्रस्ताव मान कर मैं सिनेमा देखने के लिये तैयार हो गया। स्क्रीन के अधिकांश दृश्य ऐसे लगे, जैसे मेरे जीवन से उनका गहरा सम्बन्ध हो। यह मेरा दूसरा या तीसरा चित्र था। आज तस्वीर देखकर इतना प्रभावित हुआ मैं कि सिने-संसार के प्रति मेरी पूर्व-धारणाएँ नया कलेवर पहनने लगीं।

सिनेमा के सेट डायलाग्स और प्रभावपूर्ण कहानी की मेरे अन्दर जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई। सैकड़ो दृश्य नित्य मेरी आँखों के सामने से गुजरते रहते थे। विचार आया कि मैं स्वयं क्यों न कहानियाँ लिखूं ? गुरु की जो आवश्यकता पड़ेगी ? कौन बनायेगा मुझे अपना शिष्य। अन्ततोगत्वा पुस्तकों को ही मैंने अपना गुरु बनाया। सारी समस्या जीविका चलाने की थी। रिक्शा चलाने का प्रयत्न कटु अनुभव हो ही चुका था। प्रिंसिपल साहब का सुझाव सदा खटकता रहता था। निश्चित था कि निरन्तर दो साल, यदि मुझे रिक्शा खींचना पड़ा, तो मेरा स्वास्थ्य जवाब दे बैठेगा। कामयाबी हासिल करते रहने के लिए सुन्दर-सुगठित स्वास्थ्य और चेतन विचारधारा का होना अनिवार्य-सा है। रिक्शे के अलावा, मुझे दूसरा कौन-सा काम करना चाहिये ?···ट्यूशन का विचार कंठ तक आया ! पर, राजी किसे किया जाय, जिससे ३०-४० रुपये प्रतिमास मिलता रहे ! प्रिन्सिपल साहब को मैं, किसी हालत में भूल नहीं पा रहा था। उनसे इस बारे में कुछ कहूँगा, तो वे अवश्य मेरी सहायता करेंगे ! गर्मी भर तो किसी प्रकार ऐसे ही चलाना पड़ेगा। फिर भी प्रिन्सिपल साहब से मुलाकात जरूर करूँगा एक दिन।

रविवार था। सुबह आँख खुली, तो विचार उठा कि प्रिन्सिपल साहब से मिल लिया जाय। वे अखबार पढ़ने में तन्मय थे। कुछ देर बाद जब उनकी आँख अखबार से परे हटी, तो सादर दोनों हाथ जोड़ दिये ! अपने मुख्य विषय पर शीघ्र उतर आया मैं।

—ट्यूशन ! जरूर, जरूर। बहुत ठीक सोचा है तुमने भूल ही गया था। पहला ट्यूशन तुम्हें मेरे घर ही मिल जाय

च्चे को जो पढ़ाने आते थे, वह अब बाहर जा रहे हैं। दो एक ट्यूशन और भी दिलवा दूँगा।

कृतज्ञता से दब-सा गया। आदेशानुसार उनके एकलौते पुत्र श्याम को उसी दिन से पढ़ाना आरम्भ कर दिया। पहले ही दिन उन्होंने जब दस-दस के दो नोट मेरी तरफ बढ़ा दिये, तो असमंजस में पड़ गया।

—किसलिए ? इतना-भर मेरे मुँह से निकला था कि उन्होंने प्यार से मुझे झिड़क दिया। फलतः रुपये मैंने जेब में डाल लिये। बाद में प्रिन्सिपल साहब ने कहा कि उक्त रुपये मेरे पास होने के उपलक्ष्य में पुरस्कार-स्वरूप मिले हैं। ट्यूशन के लिए प्रतिमास ३०) रु० देंगे। कहने लगे—

—इतने तक का एक ट्यूशन और दिला दूँगा मैं। कदाचित् इससे तुम्हारी पढ़ाई और घर का खर्च चल सकेगा ! बोर्ड के इम्तिहान में भी तो अच्छे नम्बरों से पास होना है तुम्हें !

शायद वे और भी कुछ कहते। अचानक कुछ याद आ जाने पर वे चुप हो गए। देर काफी हो गयी थी। उनके आग्रह-आदेश को मैं किसी प्रकार भी नहीं टाल सकता था। पेट भर भोजन करके ही घर लौटा। माँ अलग रोटी लिए बैठीं थीं। आते ही, मुझसे विलंब का कारण पूछने लगीं। शुरू से आखीर तक उन्हें सारी बातें बता दीं। अत्यन्त संतोष के साथ उन्होंने मुझे देखा। पेट भरा था, तथापि माँ ने एक रोटी और थोड़ा-सा चावल परस ही दिया।

ट्यूशन मिल जाने से अंशतः मेरी समस्या हल हो गयी। किसी प्रकार तीस रुपये दाल-रोटी खिला रहे थे। यदि अधिक रुपयों का प्रबन्ध हो सका, तो और अच्छा।

तेज-अतेज, सभी लड़कों से यह आशा करना व्यर्थ है कि वे रात-दिन कोर्स की ही पुस्तकें पढ़ते रहें। कोर्स के साथ, कुछ इधर-उधर की बाहरी पुस्तकें भी जरूरी-सी हैं। कठोर परिश्रम करने का अभ्यास पड़ चुका था। दोपहर भोजनादि से निवृत्त हो पेन्सिल-कापी लेकर एकान्त में

बैठ जाता और रंगीन विचारों को लिपिबद्ध करता रहता। कहानी-कला से अनजान होते हुए भी मैंने एक छोटी-सी कहानी पूरी कर ली। जब तक कहानी पूरी नहीं हुई, बड़े-बड़े मनसूबे-पुलाव पकाता रहा। कथा-समाप्ति पर उस उन्मादमयी प्रसन्नता कायम नहीं रह सकी! जहाँ अनेक स्थल सुन्दर प्रतीत हुए वहीं बहुत-सी कमियाँ भी नजर आयीं। फिर भी, कहानी साफ करके रख बैठा मैं। किसी अन्य को उस कहानी मैंने नहीं दिखायी! पूर्ण-संतोष भी नहीं था मुझे उस कहानी से। कुछ ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि उसे एक दैनिक में प्रकाशनार्थ भेज दिया। आशा तो थी ही नहीं कि वह छपेगी। अकस्मात् दो सप्ताह बाद मुझे कहानी के सम्बन्ध में एक स्वीकृत-पत्र मिला, तो मेरे विस्मय का कोई ठिकाना न रहा! सारा केस करने पर भी रात को मुझे नींद नहीं आयी। अनेक बार मैंने स्वयं को धिक्कारा! अस्तु।

दूसरे दिन सुबह उठा, तो सीधे कमरे में पहुँचकर कुछ लिखने लगा। लिखते समय मुझे अनुभव हुआ कि अब मेरी लेखनी पहले से अधिक सबल हो गयी है। प्रथम लिखित कहानी की तुलना में, आज जो कहानी मैंने शुरू की थी, वह अधिक सशक्त मालूम पड़ रही थी मुझे। आज इच्छा हो रही थी कि कोई मेरी कहानी सुनता।...विमल को सुनाऊँ क्या ■ अपनी कहानी? उसके अतिरिक्त अब और कोई दूसरा कहानी-श्रोता नहीं दीख पड़ा मुझे, तो पेपर करके उसके घर चला गया। गर्मी में दोपहर को विमल दिवसा नहीं बताता था। पैसों की जितनी तंगी उसे गर्मी के दिनों में रहती थी, उतनी अन्य किसी मौसम में नहीं। सीलन भरी कोठरी में अर्द्ध-निद्रित मुराटे से रहा था वह। पास की और सभी बैठकी-कोठरियाँ बंद थीं। शायद सब श्रमिक अपने-अपने धंधे में रत थे। पन्द्रह मिनट तक मैं उसके पैताने बैठा रहा। वह ऐसे घोड़े बेचकर सोया कि उसे अपने तन-बदन की सुध-बुध नहीं थी। चारों तरफ गर्द का गुब्बार लगा था। दो-फटे साफ-पोने अंगोछे, जो शायद ...बाद शायद ही साबुन से कभी धोये गए होंगे—बाँस पर बेतरतीब टंगे

काठ का वकस धुएँ से काला पड़ गया था। कड़ुवे तेल की वोतल जिसकी तलहटी में ढेरों काठ जमा था, देखकर उवकाई-मिश्रित मितली आ रही थी मुझे। कितना अभ्यस्त हो चुका है विमल ! कैसे तो वह पढ़ता-लिखता है ? मुश्किल से आधी कितावें हैं ? वह वरावर पास होता जा रहा है—मुझे अत्यधिक उत्साह एवं अनुप्रेरणा मिली उससे। मैंने निश्चय कर लिया था कि विमल के उठते ही सर्वप्रथम उसकी कोठरी की सफाई की जायगी।...जिन्दगी केवल, पेट-भर सड़ा-गला-रूखा-सूखा खाने और मैले-कुचैले विछौने पर सोने के लिए ही नहीं है, वरन् जिन्दा रहने की अचूक औषधि एकत्र करने का साधन भी।

चूहे ने कुछ गिराया कि विमल हड़वड़ाकर जाग उठा।

—तुम !...तुम...कव से बैठे हो ?

—हूँ ! आध घंटा हो रहा है।

—जगा क्यों न दिया ? तुम तो जानते ही हो कि कुम्भकरण के वाद गहरी नींद मैं ही सोता हूँ।

—खैर ! छोड़ो ये सव ! कैसी हालत वना रखी है तुमने अपने गरीव खाने...

—सफाई-वफाई आखिर करूँ तो किसके लिए ? तुम सरीखे स्नेही कभी-कदाप आ जाते हो ! वरना, कौन तो पूछता-परवाह करता है, मुझ-रिक्शे वाले की !

उसकी वात से लग रहा था कि आज, जैसे वह अपने वास्तविक मूड में हो। आदमी को जिस क्षण जीवन के वीते दिन याद आने लगते हैं, तो उसकी भाषा काफी सजीव हो जाती है। जिस विशिष्ट शैली के माध्यम से दिनेश आज मुझसे वात-चीत कर रहा था, वह किसी प्रौढ़ कहानी-लेखक की अभिव्यक्ति से कम नहीं थी। शायद वह समझ रहा था कि वह कुछ वहक गया है। फलतः प्रसंग वदलकर तुरन्त उसने मेरे आगमन का मन्तव्य पूछा।

—यों ही मिलने चला आया विमल।

—नहीं, नहीं ! कोई वात तो होगी ही ? माँ तो मजे में हैं न ?

—हाँ, वह तो बिल्कुल ठीक है।

—एकाएक रिक्शा चलाना क्यों छोड़ दिया अमर? कहीं प्रिन्सिपल साहब की सहायता तो नहीं स्वीकार कर ली?

—क्या? न···हीं···

—तब क्या कर रहे हो? आखिर कुछ-न-कुछ तो करते ही होंगे?

—ट्यूशन करता हूँ!···

—ठीक है! तुमने उचित सोचा।···पर, ट्यूशन मिलना रहना चाहिए।

—प्रत्येक काम भविष्य सोचकर ही तो किया नहीं जा सकता विमल! हमेशा ट्यूशन नहीं मिलेगा, तो कोई दूसरा काम देखना पड़ेगा।

आगे, स्यात् कुछ कहना चाहता था विमल। किन्तु अकारण उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। —मुझे तो बहरहाल इसी पेशे को चालू रखना है।

—क्यों?···

—क्या उत्तर दूँ इसका। ज्ञान की सीमाएँ अलग-अलग होती हैं। जितना ज्ञान अब तक अर्जित कर पाया हूँ, वह मेरे लिए अपर्याप्त है। दूसरों को भी, उसमें से कुछ दे सकूँगा, इसमें मुझे सन्देह है।

—इतना हलका क्यों महसूस करते हो? आरम्भ में सभी काम मुश्किल लगते हैं। अभ्यस्त हो जाने पर सभी कठिनाई हल हो जाती है।

—यह मुश्किल कठिनाई की बात नहीं है विमल! इस काम के लिए मेरी अन्तरात्मा अनुमति नहीं दे पाती।

—अच्छा, फिर सोचेंगे।··

आज का आदमी, पहले से अधिक असहाय हो गया है। आस-पास का वातावरण बच्चे के संस्कार पर अधिक प्रभाव डालता है। संघर्षों से त्रस्त विमल की माँ कूच कर गयी! पिता भी तूफानी थपेड़ों में स्थि—

रह सके। विमल में कमजोरियां स्वभावतया घरक रने लगीं। बुजुर्गों से विरासत मिली थी शायद। जल्दी छुटकारा मिलता भी तो कैसे? रिक्शे के अतिरिक्त कोई दूसरा काम सूझ ही नहीं रहा था उसे। निजी अनुभव के आधार पर रिक्शा चलाने से ज्यादा बदतर धंधा नजर नहीं आता था। भावनाओं का जितना ह्रास रिक्शा चलाने से होता है, उतना कदाचित् दूसरे कामों से नहीं। पांच-छः महीने में ही मेरे गाल पिचक गए थे! विमल तो पिछले तीन साल से रिक्शा चला रहा है।



जिस उद्देश्य से आया था विमल के पास, उसे इधर-उधर की बातों में ही भूल बैठा। कहानी सुनाने की जो उत्सुकता थी, वह अब, प्रायः समाप्त हो गयी थी! विमल ने अनेक बार आने का कारण पूछा। चाह कर भी उसे कुछ न बता सका मैं। कोठरी छोड़ने पर बहुत से ख्याल आये।···विमल को आखिर क्यों नहीं सुनाई मैंने कहानी। क्या वह उपयुक्त पात्र नहीं था। एक अन्तर्द्वन्द्व घनी-उदासी के पर्त फैलाता रहा। घर पहुँचते ही चटाई पर लेट गया। कुछ देर बाद देखा, कि माँ हाथ में मुडा अखबार को पकड़े सामने आ रही हैं। मैं सोच ही नहीं सका कि इसमें मेरी कहानी प्रकाशित हुई है। रैपर पर अंकित नाम पढ़ कर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही!···श्री अमर···! मुझे विश्वास-सा हो गया कि युगान्तर में मेरी कहानी छप गयी है। पत्र साप्ताहिक था। 'युगान्तर' रोज देख लेता था। संयोगात् उस दिन नहीं देख सका। तीसरे पृष्ठ पर मुझे अपनी 'बिल्ली' कहानी दीखी। एक-दो-तीन कई बार उसे पढ़ गया। तुरन्त अखबार की प्रति माँ के पास ले गया।

—किसकी कहानी छपी है?

—मेरी।

—पढ़, जरा।

और मैं सारी-की-सारी कहानी पढ़ गया। कुछेक स्थल माँ को अच्छे लगे। एक अप्रकट खुशी दर्शाती हुई वह अपने काम में लग गयी।

विमल से मिलकर जो रंजीदगी व्याप्त हो गयी थी, वह अब छू-मंतर हो गया थी। अपनी दूसरी नयी कहानी भी मैंने साफ कर डा

से एक लम्बा लिफाफा बनाकर उसे भी 'युगान्तर' में प्रकाशनार्थ भेज दिया। कहानी लेटर-बाक्स में डाल चुका, तो काफी ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ मुझे तरोताजा करती रहीं।···अच्छी कहानियाँ लिख लेता हूँ मैं। पहली तो मामूली थी। दूसरी कहानी तो काफी अच्छी बन गयी है। दो-चार कहानी भी प्रति मास छप जायँ, तो मेरी दयनीय आर्थिक स्थिति सुधर जाय। यदि १०) प्रति कहानी भी मिले, तो मुझ जैसे गरीब के लिए बहुत हैं। कहानी लिखने पर पैसे भी मिलते हैं, यह मैंने माँ को बता दिया। प्रिन्सिपल साहब तो 'युगान्तर' मँगाते ही हैं। उन्होंने मेरी कहानी पढ़ी, तो जरूर प्रसन्न हुए होंगे। पर, उन्हें विश्वास कैसे होगा कि उक्त कहानी का असली लेखक मैं ही हूँ! मैं तो बताऊँगा नहीं कि उन्हें मेरी प्रकाशित कहानी कैसी लगी? सैकड़ों बार सोचकर भी मैं यह साहस नहीं कर सका कि प्रिन्सिपल साहब को मैं अपनी कहानी सुनाऊँ!···और सुषमा! क्या उसे भी नहीं पता चलेगा! उसके स्मरण-मात्र से सारे शरीर में एक सिहरन-सी कौंध गयी! एजेन्ट साहब अंग्रेजी के अखबार मँगाते हैं। कभी कदाप सुषमा जरूर 'युगान्तर' ले लेती है। कल उसने खरीदा था कि नहीं? काफी देर इसी बारे में सोचता रहा। कहानी है तो काल्पनिक! उसकी अनुभूति बहुतांश सुषमा-प्रदत्त है। कहीं और कुछ तो नहीं समझ बैठेगी! उत्कट आकांक्षा फिर भी यही रही मेरी कि हर हालत में सुषमा को 'बिल्ली' शीर्षक कहानी पढ़ने को मिल जाय।

सुषमा जैसे-जैसे बड़ी हो रही थी, उसका बाहर निकलकर सहेलियों के साथ हँसना-खेलना बंद हो गया था। पहले की तरह अब वह बेबी को गोद लेकर भी बाहर नहीं निकलती थी। चौबीस-घंटे घर पर तो रहता नहीं था मैं। प्रायः जब घर के सामने मैं खड़ा रहता, तो वह नहीं दिखाई पड़ती थी। प्रकाशित कहानी देखकर बहुत सुख मिल रहा था मुझे। रिक्शे वाला ही नहीं, साधारण कहानी-लेखक भी समझने लगा था।

—o—

एक दिन माँ ने मुझे बिस्तर से उठाया, तो मैं हड़बड़ा उठा। बाहर से गूँजती हुई आवाज मेरे रन्ध्र-रन्ध्र में भर गयी। भाग कर नीचे उतरा, तो देखा कि एजेन्ट साहब का घर धुआँ उगल रहा है। तब तक काफी सामान जल चुका था। फायर ब्रिगेड वालों को फोन किया जा चुका था। मुहल्ले-टोले के लोग बाल्टी भर-भरकर पानी डाल रहे थे। उन्हें पानी डालते देख, कोई भीतरी शक्ति मुझे भी बाल्टी ले जाने के लिए उत्प्रेरित करने लगी। गगन-चुम्बी अग्नि-लपटें पानी की मामूली मार से कैसे शान्त होंगी यह बात मेरे मगज में नहीं धँस पा रही थी। उनका सारा मकान गंगा-यमुना का कछार हो गया था। उस घर में जो कभी नहीं गया था, वह भी बेरोक दिखावटी सहानुभूति प्रदर्शन करने के लिए चला जा रहा था। एक तो अर्द्ध-रात्रि का समय। साँय-साँय करता हुआ वातावरण। थोड़े लोगों की आवाज भी उस वक्त आकाश फाड़ने के तुल्य प्रतीत हो रही थी। एजेन्ट साहब की त्रस्त खिन्न मुद्रा निरख कर मेरे पैर के नीचे की जमीन धँसी जा रही थी। सुषमा का निस्तेज चेहरा मेरे भीतर नये रक्त का संचार कर रहा था। अक्सर जब मैं बाल्टी भर कर ऊपर चढ़ने लगता, तो सुषमा से मुठभेड़ हो जाती। सीढ़ी तक मैं बाल्टी ले जाता, अनंतर बाल्टी सुषमा ले लेती थी। न चाहने पर भी मैं पानी से भरी बाल्टी उसे पकड़ा देता था। खाली बाल्टी पुनः मग के नीचे रख देता था। मुश्किल से दस मिनट बीते होंगे कि फायर ब्रिगेड के कर्मचारी ट्यूब की मोटी जल-धार से आग पर काबू पाने का यत्न करने लगे। जो काम बाल्टी-टब द्वारा आधे घन्टे में भी नहीं हुआ, उसे फायर ब्रिगेड के नवजवानों ने बीस मिनट में सम्पन्न कर दि[illegible]

आग बुझ चुकी थी। धीरे-धीरे घर में जमा भीड़ छटने लगी। घर में दुखी क्लान्त सब थे। रो केवल सुषमा की माँ रहीं थीं। पड़ोसिनें फिर भी उनसे कुछ कह नहीं पा रही थीं। क्षतिग्रस्त सामान इतना अधिक था कि मैं उनके मूल्य का कोई अन्दाज ही नहीं लगा सका। मैं किसी भाँति आँगन में आया, तो संयोगात् सुषमा से फिर मुलाकात हो गयी। मेरे मुँह से बरबस निकल ही गया।

—लगी कैसे आग ?

··· कुछ देर तो गुमसुम खड़ी रहीं। सिर हिलाकर अनन्तर आगे खिसक गयीं। मैं स्तब्ध उसकी चढ़ती-मिटती रेखायें ही देखता रहा।

बाबू जी की मृत्यु के बाद से, माँ ने घर से बाहर निकलना बन्द कर दिया था। असम्भाव्य विश्वास से माँ को भी, एजेन्ट साहब के मकान के सामने खड़ा देखकर मुझे थोड़ा विस्मय हुआ। आँच किसी पर लगे, दुःख सबको होता है। मुहल्ले के लगभग सभी आदमी जब एकत्र हों, तो माँ कैसे घर के भीतर बैठ सकती थीं। मुझसे मिलने पर वे विस्तार से सारी बात पूछने लगीं। सुषमा से तो कोई बात मालूम नहीं हो पायी थी। दिनेश जरूर कुछ सुनी-सुनाई चर्चा बुलन्द कर रहा था। ·· कि बिजली के तार से आग लगी।

बिजली के सम्बन्ध में अनेक आलोचनायें की गयीं। विद्युत् की समस्त अच्छाइयाँ मुझे सारहीन लगने लगीं। मनुष्य थोड़ी-सी तड़क-भड़क और सुख-सुविधा के लिए कितना पागल हो जाता है। आग लगने से कितने मूल्यवान् एवं भारी-भरकम सामान का नुकसान हो गया। विज्ञान उन्नति कर रहा है, किन्तु उसके अन्दर संहारकारी जो तत्व विद्यमान हैं, वे उसकी त्वरित प्रगति को महत्वहीन ठहरा रहे हैं। बिजली का कोई भी आविष्कृत यन्त्र सर्वसाधारण के लिए कितना ग्राह्य और उपादेय है, इस सत्य से कोई मुकर नहीं सकता। ऐसे नागरिकों की आज भी कमी नहीं है, जो बिजली का स्विच दबाते आँख-मुँह बिदकाने लगते हैं। रात को अचानक जब सर्प दिखाई पड़ जाता है, तो

मस्तिष्क में अनेक प्रकार की बेमन्न विचारधाराएँ करेन्ट-सा मारने लगती हैं। उसके चेतन-विवेक के दो पल भी स्थिर रह सकें तो वह निरन्तर यही प्रार्थना करता है कि कोई सहायक उसे सर्प-दंश से मुक्ति दिला दे।

हंगामा शान्त हो गया, तो बिस्तर पर लेटते ही मुझे नींद आ गयी। कल तक सुषमा किसी-न-किसी बहाने मेरी पलकों के सामने आ जाती थी। अब क्या होगा? इस जाने वाले मकान में एजेन्ट साहब कदापि नहीं रहेंगे। भाग्य की बात। ईश्वर को विघ्न डालनी थी। रोज या सप्ताह में एकाध बार जिससे हम मिलते-जुलते रहते हैं, उससे स्वभावतया प्यार हो जाता है। यहाँ से जाने पर सुषमा को क्या याद रहेगी मेरी! आँखें आज ही गीली हो गयीं। यह तो मैंने कभी नहीं सोचा था कि सुषमा मेरी जीवन संगिनी बन जायेगी? इतना विश्वास जरूर हो गया था कि सर्वविदित प्रेम पाने के दुष्प्रयासों की भाँति बेकार साबित नहीं होगा। आज लग रहा है कि सुषमा से मेरा मिलन ट्रेन में एक मुसाफिर की तरह था। रात भर इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा। सुबह उठा, तो सिर भारी-भारी-सा लग रहा था। अनिच्छा से नीचे उतरा। शौचादि से निवृत्त हुआ। प्रिंसिपल साहब के घर ट्यूशन पढ़ाने चला गया। पहुँचने पर विदित हुआ कि श्याम आज नहीं पढ़ेगा। वह ज्वरग्रस्त था। वापिस आने लगा, तो प्रिंसिपल साहब बैठक में दिखाई पड़ गए। अभिवादन स्वीकार कर उन्होंने कुर्सी पर बैठ जाने को कहा। इधर-उधर की अनेक बातें होती रहीं। स्कूल खुलने वाला था। सत्रारम्भ में कितनी परेशानी बढ़ जाती है, इस पर प्रिंसिपल साहब ने काफी बताया। साढ़े आठ बज गए थे। उनके लिये सर्बत आया था। मेरे मना करने पर भी एक गिलास सर्बत मुझे भी पकड़ा दिया।

—अब, जाऊँगा मैं?

अच्छा! मिलते रहो। आ कल भी आना।

क्यों सुना रहे हैं ये? सहसा-सहसा यही सोचता रहा मैं। समझ में कुछ भी नहीं आया। सिर हिला कर डेस्पैच सौंप दिया।

मार्ग में विमल से भेंट हो गयी। शायद दूर से पुकार रहा था वह मुझे। अन्यमनस्क रहने की वजह से मैं लापरवाह-सा आगे चला जा रहा था। उसने अचानक मेरी पीठ पर हाथ फेरा, तो मैं चौंककर साश्चर्य देखता रह गया।

—कई आवाजें दीं। किस दुनिया में थे?

—भाई, क्षमा करना। मैंने बिलकुल नहीं सुना। ट्यूशन नहीं पढ़ा सका आज।

कुछ रुककर कहा विमल ने :—

पढ़ने में कैसा है श्याम?

—मामूली। काफी देर में समझ पाता है। खेल-कूद में अधिक रुचि लेता है। यूँ समझो कि प्रिंसिपल साहब के बिलकुल विपरीत हैं। दिन भर धूप में घूमेंगे, तो माँदे न पड़ेंगे तो क्या होगा? डाँटने-डपटने की आदत नहीं है प्रिंसिपल साहब की। माँ भी बहुत सीधी हैं।

एकाएक प्रसंग बदल गया। चट से उसने अग्निकांड की चर्चा छेड़ दी। संक्षिप्त घटना-विवरण दिया उसे पहले मैंने। बीच ही में बोल पड़ा :

—तो नुकसान भी काफी हुआ होगा।

—ठीक-ठीक तो कुछ भी नहीं मालूम। आठ-दस हजार के लगभग जरूर समझना चाहिये।....

एक के बाद एक प्रश्न पूछता रहा विमल। मेरी तबीयत भारी थी। मुश्किल से पिण्ड छुड़ा पाया मैं। मुहल्ले के फाटक तक पहुँचा, तो सुषमा, दिनेश और उनकी माता जी, मय असबाब जाती हुई दिखाई पड़ीं? पिछली रात जो स्वप्न मुझे दिखाई पड़ा था, उस प्रतिरूप को साक्षात् इस वक्त देख रहा था। सुषमा के सामने हुआ, तो उसकी बड़ी-बड़ी आँखें नत हो गयीं। दिनेश अक्खड़बाजी में चूर मुझे आँखें तरेर रहा था। बाकी सब लोग बुझे मन से नये मकान का रास्ता तय कर रहे थे। रौ में खोया घर तक आ गया। अकस्मात् विचार उठा कि कम-से-कम यह तो देख लूँ किस जगह शिफ्ट कर रहे हैं? बैङ्क के बहुत

से चपरासी सामान उठाने रखने में मदद कर रहे थे। सब अपनी-अपनी मूक संवेदना प्रकट कर रहे थे। आधा-तिहाई सामान जा चुका था।

कुली के पीछे-पीछे चलता हुआ जब मैं चौक बाजार पहुँचा, तो देखा कि एजेन्ट परिवार बैंक के पास ही किसी मकान में शिफ्ट कर रहे हैं। मकान अच्छा था ! किन्तु उतना सुविधाजनक कदाचित् नहीं था, जितना कि पहले वाला !····*कितना अच्छा होता, यदि शुरू में ही सुषमा मेरे* पड़ोस में न रहती। उसका जो प्रभाव मेरे मन पर अंकित था, उसे मेरे सिवा और कोई नहीं जानता था। शायद सुषमा को भी नहीं मालूम कि मैं उसे किस रूप में स्वीकार कर चुका हूँ। मेरे उसकी दृष्टि में मेरा चुनाव भावुकतापूर्ण रहा हो। किसी को भी यह विदित नहीं हो सका कि अमर अन्दर-ही-अन्दर सुषमा को चाहता है। उसकी हर छवि *से उसे प्रेरणा मिलती है। क्या सुषमा के प्रति मेरा आकर्षण सीमित रहेगा ?* केवल यही बाकी बचेगा कि वह मकान के सामने रहती थी और मैं उसे स्नेहातुर देखता था। मैं सदैव सुषमा को अपने दिल के निकट समझता रहा। वह क्या समझती है ? इसमें अभी भी सन्देह है मुझे। इस विषय पर न कभी खुलकर बातचीत हुई और न ही कोई शुभ-अशुभ घटना। सत्य केवल इतना है कि सुषमा मेरे साथ बचपन में *खेली है। अक्सर दोनों घण्टों हँसे-रोये हैं।····*

बहुत कुछ सोचने के बाद भी मैं यह निश्चय नहीं कर सका कि सुषमा से मेरा कैसा सम्बन्ध है। उसे चाहते पाने का ध्येय क्या है ? किसी बात में भी तो तुलना नहीं की जा सकती। कहीं बहक तो नहीं गया हूँ मैं।

सुषमा के चले जाने से कुछ दिन मैं काफी परेशान रहा। भूल जाने का संकल्प दोहराता, तो कुछ ऐसी तस्वीरें दिखाई पड़ती, जिन्हें पहले कभी नहीं देखा था मैंने। अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि सचमुच यदि सुषमा मुझे पसन्द है, तो उसे अन्तर्मन तक ही सं[illegible] होगा। स्पष्ट है कि उसे मैं भोग की चीज समझ कर आहृ

था। आरम्भ से ही लक्ष्मी-दुर्गा का रूप समझने लगा था। उसकी आकृति, भंगिमा एवं शरीर का उतार-चढ़ाव सब असाधारण लगते थे। सत्य-सा ही है कि जीवन में यदि कुछ कर सका मैं तो उसका सारा श्रेय सुषमा को ही मिलेगा। ऊपर उठने की क्रांतिकारी भावनायें एकमात्र उसी से मिली हैं मुझे। सुषमा न आती मेरे जीवन में, तो शायद रिक्शा-चालक ही बना रहता। जो अगणित संघर्ष झेलने पड़ रहे हैं, वे फिर न झेले जाते। बराबर प्रेरणा-स्रोत यदि रससिक्त न रहता। विचार उठते-मिटते रहते थे। सुषमा की मूक प्रेरणा मिलती और मैं अपने लक्ष्य को वेधता रहता। अचानक मुझे एकलव्य की कथा याद आने लगी। गुरु द्रोणाचार्य के न चाहने पर भी एकलव्य गुरु की मूर्ति बना कर अभ्यास करता रहा और धीरे-धीरे एक दिन धनुर्विद्या में पारंगत भी हो गया। वैसा ही क्यों न करूँ? वह भले सामने नहीं रही। पर उसकी याद तो सदा संग रहेगी। विश्वास से उसे पुकारूँगा, तो अवश्यमेव वह मेरा साथ देगी। प्यार दिखावे के लिये तो किया नहीं जाता। जो प्रेम की मुनादी करता है, उसे कभी सफलता नहीं मिलती।

माँ की तबीयत प्रायः खराब रहती थी। अस्थि-पंजर मात्र रह गया था। सुगमता से रामायण भी नहीं पढ़ पाती थी। आँख की रोशनी कम होते देखकर मुझे चिन्ता हुई। आँख परीक्षण के लिए जब-जब मैंने कुछ कहा, उन्होंने एकदम इन्कार कर दिया। कुछ दिन टाल-टूल करता रहा। जब उन्हें और भी कम दीखने लगा, तो जोर डालकर मैं डॉ० नागपाल के यहाँ ले गया। आँखें काफी खराब हो चुकी थीं। डॉ० साहब ने परामर्श दिया कि ऑपरेशन तुरन्त करा डालना चाहिये। काटो तो खून नहीं। ऑपरेशन से कहीं और खराबी न आ जाय, यह सोच-सोचकर मेरा प्रति रोम चीत्कार कर उठा। अन्ततोगत्वा ईश्वर को प्रणाम कर मैंने मन पक्का कर लिया कि माँ की आँख का ऑपरेशन होगा ही।

जाड़े के दिन थे। एक दिन प्रिंसिपल साहब से मैंने माँ की चर्चा कर दी। मुझ पर बिगड़े कि पहले क्यों नहीं बताया मैंने। वे मुझे डॉ० माधवराव के पास ले गये, जो नेत्र-रोग के विशेषज्ञ थे। उन्होंने सभी तरह की सुविधा प्रदान करने का आश्वासन दिया। जब आशा बँध गयी कि ऑपरेशन द्वारा माँ की आँख ठीक हो जायगी, तो किसी तरह राजी कर लिया उन्हें। प्रिंसिपल साहब की वजह से माँ को निःशुल्क अस्पताल में भरती कर लिया गया। खाने-पीने के अलावा और कोई प्रबन्ध नहीं करना था मुझे।

ऑपरेशन तिथि से लेकर पट्टी खुलने तक मेरी हालत बलि के बकरे जैसी थी। न भूख लगती और न ही रात नींद आती थी। चौबीस घंटे यही ख्याल आता रहता था कि ओ, सर्वशक्तिमान! माँ की आँख ठीक हो जाय। मेरे रहते कितना कष्ट झेलना पड़ रहा है उन्हें।

का हृदय फौलादी होता है। और कोई होता, तो निस्संदेह टूट-टूटकर बिखर जाता। ये माँ थीं, जो मेरा मुँह देख-देखकर जीवित थीं।

पट्टी खुलने का समय निकट आता जा रहा था। पूछने से विदित हुआ कि इस सप्ताह के भीतर पट्टी खोल दी जायगी। अपना कहने लायक कोई नहीं था। विमल ही कुछ काम कर सकता था। मुकुन्द मामा को किसी हालत में भी मैं सूचित नहीं करना चाहता था।

उषा काल में उठ दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर मैं अस्पताल पहुँच गया। माँ को आगमन की सूचना देकर बाहर हो गया।

पुनः वापस आया, तो माँ के स्वर में घबड़ाहट का अंश बहुत था उन्हें अस्थिर देखकर पता नहीं मुझे क्या हो जाता था।

मुझे पता ही नहीं चला कि कैसे एक घन्टा बीत गया। डॉक्टर साहब ने राउण्ड शुरू कर दिया था। माँ के कमरे में दाखिल हुए, तो मुझे बाहर खड़ा देखकर निकट बुला लिया।

—कहिए।

—जी !....

—खन्ना साहब को मेरा पत्र दे दिया था।

—उसी दिन।....

रोगी शैय्या के निकट पहुँच चुके थे। मरीज के सम्बन्ध में वार्ड मास्टर से कुछ पूछने लगे। डॉक्टर साहब की आवाज पहचान, रोगी चिल्लाया। उक्त कारुणिक चित्कार से डॉक्टर साहब स्तब्ध हो गये। सप्रेम पूछा—

—क्या हुआ दीवान जी।

—क्या बताऊँ गरीब परवर।

—कुछ तो ! ..

—ये मास्टर और नर्स मेरी जरा चिन्ता नहीं करते। जो एक बार पट्टी बँधी, तो दोबारा बदलने का नाम ही नहीं। यानी पानी-पेशाब के लिए तो मुझे चीखना पड़ता है। अक्सर बिछावन पर पेशाब निकल जाती

है। मुझसे मज़ाक करते हैं सब। न घर का हूँ न बाहर का। अल्लाह जानता है कि मैंने जो शिकायत की है, उसका नतीजा क्या भुगतूँगा। और मिल जाय, तो बेहतर हो डॉक्टर साहब।

आस-पास सब मुस्करा रहे थे। उस वातावरण में प्रायः सभी परिचित थे। मानो दीवान जी की आदत हो चीखने चिल्लाने की। दीवान जी ने सच ही तो कहा होगा?···सच! कितनी नादानी करते हैं यहाँ के लोग। मृत्यु की गोद में बैठे, ये गरीब लाचार मरीज कितना कष्ट भोग रहे हैं। रह-रहकर कर्मचारियों पर क्रोध-सा आने लगा। कमरे के बाहर विमल कितनी देर से मेरी प्रतीक्षा कर रहा था, जान ही नहीं सका। मुँह आश्चर्य-सा हो गया था विमल का।

किसी प्रकार माँ की पलंग के समीप आ गए डॉक्टर साहब। एक साथ कई अभ्यागतों की पुकार-पुकार सुनकर माँ ने दोनों हाथ जोड़ दिये।

—भगवन्! आज आप फिर से उजाला देंगे।

उनके मुँह से निकला यह शब्द मुझे रोमांचित कर उठा। मैं ईश्वरपरायणता में तल्लीन हो गया। अन्दर कोई चोर था, जो बरबस मुझे कमज़ोर करता जा रहा था।

मामूली गड़बड़ी का सामान गाड़ी पर रखे कम्पाउण्डर आ रहा था। एक चुलबुली-सी भर्ती हुई थी। माँ की आँखें रोशन देखने के लिए मैं बेताब था। विमल अलग व्यवस्था से गुमशुदा की इन्तज़ारी कर रहा था। विमल से कई बार घर जाने के लिए कहा। उसने हर बार झिड़क दिया मुझे। केवल इसीलिए उससे घर जाने के लिए कह रहा था, कि नुकसान न हो। मुझे तो प्रतिमास बँधी-बँधाई नोट मिल जाती है। वह तो केवल दिन की कमाई खाता है।

थियेटर-रूम में कुछ लोग माँ के सामने खड़े थे। पट्टी खुलने ही वाली थी। बीच-बीच में माँ को तसल्ली भी दे दी जाती थी। यूँ नहीं आदि बीसों दर्जन करने पड़े उन्हें। और कोई चारा पर्दाफाश विकट उठता। पट्टी खुल जाने के बाद भी कुछ देर

का हृदय फौलादी होता है। और कोई होता, तो निस्संदेह टूट-टूटकर बिखर जाता। ये माँ थीं, जो मेरा मुँह देख-देखकर जीवित थीं।

पट्टी खुलने का समय निकट आता जा रहा था। पूछने से विदित हुआ कि इस सप्ताह के भीतर पट्टी खोल दी जायगी। अपना कहने लायक कोई नहीं था। विमल ही कुछ काम कर सकता था। मुकुन्द मामा को किसी हालत में भी मैं सूचित नहीं करना चाहता था।

उषा काल में उठ दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर मैं अस्पताल पहुँच गया। माँ को आगमन की सूचना देकर वाहर हो गया।

पुनः वापस आया, तो माँ के स्वर में घवड़ाहट का अंश वहुत था। उन्हें अस्थिर देखकर पता नहीं मुझे क्या हो जाता था।

मुझे पता ही नहीं चला कि कैसे एक घन्टा वीत गया। डॉक्टर साहव ने राउण्ड शुरू कर दिया था। माँ के कमरे में दाखिल हुए, तो मुझे वाहर खड़ा देखकर निकट वुला लिया।

—कहिए।

—जी !····

—खन्ना साहव को मेरा पत्र दे दिया था।

—उसी दिन।····

रोगी शैय्या के निकट पहुँच चुके थे। मरीज के सम्वन्ध में वार्ड मास्टर से कुछ पूछने लगे। डॉक्टर साहव की आवाज पहचान, रोगी चिल्लाया। उक्त कारुणिक चित्कार से डॉक्टर साहव स्तब्ध हो गये। सप्रेम पूछा—

—क्या हुआ दीवान जी।

—क्या वताऊँ गरीव परवर।

—कुछ तो ! ··

—ये मास्टर और नर्स मेरी जरा चिन्ता नहीं करते। जो एक वार पट्टी वँधी, तो दोवारा वदलने का नाम ही नहीं। यानी पानी-पेशाव के लिए तो मुझे चीखना पड़ता है। अक्सर विछावन पर पेशाव निकल जाती

है। मुझसे मजाक करते हैं सब। न घर का हूँ न बाहर का। अल्लाह जानता है कि मैंने जो शिकायत की है, उसका नतीजा क्या भुगतूँगा। मौत मिल जाय, तो बेहतर है डॉक्टर साहब।

आस-पास सब मुस्करा रहे थे। उक्त वातावरण से प्रायः सभी परिचित थे। मानो दीवान जी की आदत हो भौंकने चिल्लाने की। दीवान जी ने सत्य ही तो कहा होगा?...सच! कितनी नादानी करते हैं यहाँ के लोग। मृत्यु की गोद में बैठे, ये गरीब लाचार मरीज कितना कष्ट भोग रहे हैं। रह-रहकर कर्मचारियों पर क्रोध-सा आने लगा। कमरे के बाहर विमल कितनी देर से मेरी प्रतीक्षा कर रहा था, जान ही नहीं सका। मुँह आरक्त-सा हो गया था विमल का।

किसी प्रकार माँ की पलंग के समीप आ गए डाक्टर साहब। एक साथ कई अभ्यागतों की पद-चाप सुनकर माँ ने दोनों हाथ जोड़ दिये।

—नमस्ते! आज आप फिर से उजाला देखेंगी।

उनके मुँह से निकला यह शब्द मुझे रोमांचित कर उठा। मैं ईश्वराराधना में तल्लीन हो गया। अन्दर कोई चोर था, जो बरबस मुझे कन्फ्यूज करता जा रहा था।

मामूली सर्जरी का सामान गाडी पर रखे कम्पाउण्डर आ रहा था। एक धुकधुकी-सी मची हुई थी। माँ की आँखें रोशन देखने के लिए मैं बेसब्र था। विमल अलग व्यग्रता से मुसधाद की इन्तजारी कर रहा था। विमल ने कई बार घर जाने के लिए कहा। उसने हर बार झिड़क दिया मुझे। केवल इसीलिए उससे चले जाने के लिए कह रहा था, कि नुकसान न हो। मुझे तो प्रतिमास बँधी-बँधी नोट मिल जाती है। वह तो केवल रिक्शे की कमाई खाता है।

थियेटर-रूम में कुछ लोग माँ के सामने खड़े थे। पट्टी खुलने ही वाली थी। बीच-बीच में माँ को ताकीद भी दे दी जाती थी। यूँ करो, हिलो नहीं आदि बीसों दसरत करनी पड़ी उन्हें। और कोई वक्त होता, तो मैं कदाचित् बिगड़ उठता। पट्टी खुल जाने के बाद भी कुछ देर माँ सेलाँस

दे रहने को कहा गया। पुनः डॉक्टर साहब ने जब रुई में दवा लगा
र माँ की आँखें पोंछी, तो डॉक्टर राव ने उनसे आहिस्ते-आहिस्ते पलक
खोलने का आदेश दिया।

मैं देख भर रहा था। क्या संगत ठीक है—इस ओर जरा ध्यान नहीं जा पा रहा था। एक सेकन्ड के लिए भी मेरी टकटकी माँ की नजर से दूर नहीं जा पाती थी। पुनः डॉक्टर साहब के कहने पर भी जब माँ अपनी बन्द आँखें खोल प्रकाश न देख सकीं, तो एकबारगी काँप उठा मैं। विविध औषधियों के तत्क्षण प्रयोग से आँखें तो खुल गयीं। पर दिखाई कुछ नहीं पड़ा उन्हें।

उनसे पूछा गया—

—दीख रहा है कुछ!

—नहीं। अभी भी अंधेरा है मेरे आगे। और धाड़ मार कर रोने लगीं। विवेक खो बैठा। याद ही नहीं रहा कि कहाँ हूँ मैं। इच्छा हुई माँ के साथ मैं भी रोऊँ। निष्प्रभ चेहरा देखकर डॉक्टर राव ने मुझे पास बुलाया। कहा—

—घबड़ाओ नहीं। फिर से ऑपरेशन होगा तुम्हारी माँ का। सब बातें सुन भर रहा था मैं। सैकड़ों विचार मुंह तक आये। सब निकालता ही गया।

—पर, अब तो एकदम अन्धी हो गयीं माँ।

दो डॉक्टर और आ गये थे। अंग्रेजी में माँ के बारे में ही बातें हो रही थीं। थोड़ी अंग्रेजी मैं समझ लेता था। उनकी बातचीत का आशय मेरे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ रहा था। सम्मिलित राय यही रही सबकी कि ऑपरेशन दुबारा किया जाय।

स्वगत कह उठा—

—काश! कि दुबारा ऑपरेशन से माँ प्रकाश देख सकें।

डॉ० राव के कमरे में मैं उद्विग्न बैठा था। विमल माँ के पास था

—सब कुछ यहीं से मिलेगा उन्हें ।

—लेकिन यहाँ की चीज खायेंगी कैसे ?

—खायेंगी क्यों नहीं । तुम फिकर मत करो ।

आगे क्या पूछूँ ? स्वतः चुप हो गया ।

बाहर निकलकर सोचने लगा कि कैसे क्या किया जाय ? माँ को जिस क्षण डॉक्टर साहब की उदारता का भान होगा, तो निश्चित कुपित हो जायेंगी । सम्भव है कि मेरी कोई बात न मानें वह । घन्टों घूमता रहा, चक्कर लगाता रहा । निष्कर्ष फिर भी कोई नहीं निकला । प्रिंसिपल साहब की जान-पहचान के कारण ही तो डॉक्टर साहब रहम खा रहे हैं । इसका यह मतलब तो नहीं कि मैं अपने सम्मान पर चोट आने दूँ । जिस इज्जत के लिए आज तक लड़ा-भिड़ा वही पानी के मोल बिके ? आज दैवात् माँ अन्धी हो गयी हैं । कल पुनः ईश्वर ने रोशनी बख्श दी, तो क्या उन्हें मलमला नहीं रहेगा । मुझे अपना बेटा कहते भी संकोच करेंगी शायद । माँ, जिन्होंने मामा जी का अहसान ठुकरा दिया, बाबू जी की सख्त बीमारी की हालत में भी घर की मान-मर्यादा पर दुनिया वालों को उँगली नहीं उठाने दी । उसी आत्माभिमानी माँ को धोखा देने जा रहा हूँ ।

आँसू के टेढ़े-तिरछे कतरे मेरे ओंठ नमकीन करने लगे । खारे आँसू पीते-पीते उबकाई-सी आने लगी । पास के पार्क में जा बैठा । सोच बहुत कुछ रहा था, लेकिन धँस एक बात भी नहीं रही थी । अप्रकट आदेश हुआ कि मुँह धो डालूँ । मुँह धोते ही मन हल्का हो गया । मन ललकार उठा साहसी, संघर्षशील एवं बुद्धिमान व्यक्ति किसी की कृपा नहीं स्वीकारते । मुफ्त में जिन्हें स्वर्ग मिल जाता है, उन्हें संतोष मरने के बाद भी नहीं मिलता । जीवन में जहाँ अनेक इम्तहान पास करते आये हो, वहीं इसे भी उत्तीर्ण करना सीखो । बुजदिलों को शरणागत बनाना कायरों का काम है । साफ मना कर दो । उनकी सहायता रुपये पैसे से नहीं, अपितु अर्जित अनुभवों की लो । हीनता की भावना आने ही मत दो ।····

मुझे जैसे कुछ हुआ ही न हो। उठ खड़ा हुआ। फल पट्टी से रोजाना की भाँति मुसम्मी आदि खरीद लाया। स्वयं को धिक्कारा भी खूब! कि व्यर्थ माया-मोह के चक्कर में फँसा रहा इतनी देर!

पट्टी खुलने से माँ की तकलीफ बढ़ गयी थी। मरीज जिस रोग-उपचार के लिए औषधि खाता है, वही अगर लाभ की जगह नुकसान पहुँचाये, तो मरीज का सारा धैर्य काफूर हो जाता है। यदि पट्टी खुलने पर माँ की रोशनी मिल जाती, तो कदाचित् पट्टी खुलने के बाद की समस्त तकलीफ वे भूल जाती। ईश्वर का लिखा तो मेटा नहीं जा सकता। जिसकी उम्मीद मुझे स्वप्न तक में नहीं थी, उसका प्रतिकार मैं अपनी आँखों से देख रहा था। अस्पताल पहुँचकर फल लेने के लिए जब मैंने माँ से आग्रह किया, तो कुछ बुदबुदाती हुई शैय्या पर बैठ गयी। सन्तरे छीलकर दो-दो फाँक मैं उनके हाथ पर रखता गया।

—अब बस! इच्छा नहीं है।

—क्यों माँ?

कोई उत्तर नहीं दिया उन्होंने।

—आज ज्यादा सुस्त हो गयी हो तुम। अपने जी से वहम निकाल फेंको। डॉक्टर साहब बड़े लज्जित हो रहे थे। उनके अभिमत से कर्मचारियों की असावधानी के कारण तुम्हारा पहला ऑपरेशन असफल रहा। इस बार डॉक्टर साहब स्वयं अपनी देख-रेख में सारा काम करें-करायेंगे।

—कोई कुछ करे, बेटा। तकदीर ही फूटी हुई है, तो कोई क्या कर लेगा। तुम्हीं ने रात-दिन एक कर दिया। पैसे भी खूब बिगाड़े। लेकिन हाथ क्या लगा? बर्बादी, बेकसी और निराशा।···

—तुम्हीं तो कहा करती थी माँ कि पैसा हाथ का मैल होता है?···

—कहने को कह गयी। परन्तु वास्तविकता यह है कि आज ··· फल लाने के लिए पैसा नहीं है, तो सब कुछ जानते हुए भी ···

नहीं खाएँगे। कोई कर्ज कहाँ तक देगा ? उऋण होने का भी कोई उपाय हो। मैंने सोचा है कि मंगल सूत्र दे दूँ तुझे।

—यह अशुभ क्या कह रही हो। जीते जी मंगल-सूत्र कभी नहीं उतरने दूँगा।

—फिर काम कैसे चलेगा। तेरी अलग कोई ऐसी कमाई तो है नहीं। ट्यूशन के रुपये से महीने भर का खर्चा तो चलता नहीं। दवा-दारू का मद, किस आमदनी में जोड़ता है फिर ? अन्धी तो आज हूँ। कल तक तो सब कुछ सामने देखती थी न।···

उनकी एक-एक बात चौकन्ना होकर सुन रहा था। आँसू रोकते-रोकते दम घुटने लगा था। कैसे शीघ्र चंगी हो जायँ माँ ?····बस।

आगामी ऑपरेशन के लिए अधिक दिन प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। ऐन ऑपरेशन के वक्त डॉ० राव के साथ तीन और डॉ० थिएटर-रूम में उपस्थित थे। अतीव सावधानी से सारा कार्य क्रियान्वित हो रहा था। उनकी सावधानी एवं सतर्कता देखकर मुझे विश्वास-सा हो चला था कि माँ का ऑपरेशन इस बार कामयाब होगा।

पट्टी खुली। आँख फाड़-फाड़कर माँ मुझे एकटक देखने लगीं। मुझे यह पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ी कि उन्हें सब कुछ दिखाई पड़ रहा है।

फौरन डॉक्टर साहब के आगे प्रणत हो गया। बड़े प्रेम से उन्होंने मुझे सम्भाला तथा तसल्ली देते हुए सोल्लास थियेटर-रूम के बाहर निकल गये।

एक सप्ताह तक और रहना पड़ा माँ को अस्पताल में। पूछ ही लिया मैंने एक दिन डॉक्टर साहब से कि माँ कब यहाँ से छुट्टी पायेंगी ?

—किसी दिन भी उन्हें घर ले जा सकते हो। अभी उन्हें आराम की सख्त जरूरत है। घर पर भी काफी केयरफुल रहना पड़ेगा।

—जी !····आगे मेरे मुँह से एक शब्द नहीं निकला !

हाथ का सहारा दे जिस दिन मैंने माँ को रिक्शे पर बैठाया, उस क्षण मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। आज विमल हम दोनों को खींच रहा था। ऐसे, रोज सैकड़ों उसके रिक्शे पर बैठकर गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते होंगे। आज जिस आह्लाद और उत्कंठा से रिक्शा चला रहा था विमल, वह परम तोष का कारण जैसा था। बीच में कई बार मैंने कहा कि विमल माँ की बगल बैठ जाय और मैं रिक्शा चलाऊँ। उसने अन्त तक मेरी बात नहीं मानी। देखते-देखते चौरंगी स्क्वायर आ गया। विमल ने घर तक पहुँचा दिया हम लोगों को। दातार बाबू ने रिक्शे से माँ को उतरते देखा, तो हालचाल पूछने लगे। मैंने उनकी हर पूछी बात का विनम्रता से उत्तर दिया। कुछ और पड़ोसी भी मिले। किसी ने शायद कुछ पूछना उचित नहीं समझा।

ट्यूशन रोज पढ़ा आता था। श्याम मुझसे डरता बहुत कम था। मारने-पीटने की आदत मुझमें बिलकुल नहीं थी। प्रिन्सिपल साहब से शिकायत करते भी लज्जा प्रतीत होती थी। उसे रास्ते पर लाने का उपाय ही नहीं सोच पा रहा था। डाँटने-डपटने से कोई प्रभाव पड़ता नहीं था उस पर। जिस बात पर आज डाँटता, दूसरे दिन वही शरारत बरकरार रहती। मैं जब उससे पूछता—

—काम कर लिया सब ?

तो एक-न-एक बहाना बता देता। प्रिन्सिपल साहब घर पर नहीं रहते थे और माँ उनकी यह बर्दाश्त नहीं कर सकती थीं कि उसे थोड़ी भी मार पड़े। कोशिश से जिस सबक को उसे पढ़ाता; हाँ-हूँ करके टाल जाता! प्रश्न पूछने लगता, तो कूप-मंडूक मेरा मुँह निहारने लग जाता था। ऐसे समय मुझे अत्यधिक क्रोध आता! चारा कोई था नहीं! अतएव चुपचाप निर्दिष्ट टाइम पास कर घर लौट आता था। यदि मारने-पीटने से लड़के बेहया हो जाते हैं, तो उन्हें रास्ते पर कैसे लाया जाय! अचानक मेरे मस्तिष्क में यह विचार उठा कि सर्वप्रथम मुझे यह पता लगाना चाहिये कि आखिर श्याम चाहता क्या है ? पढ़ते समय उसका मस्तिष्क किधर रहता है ? क्यों न पहले वही खुराक दूँ उसे, जिससे वह संतुष्ट रहे!

प्रातः सात बजे के बाद मैं उसके घर पहुँचा। मालूम हुआ, अभी-अभी सोकर उठे हैं! अखबार आ गया था। मैं प्रिन्सिपल साहब के कमरे से समाचार-पत्र उठा लाया और लगभग आधा घंटे तक पढ़ता रहा। मुख्य-मुख्य शीर्षक दोहरा चुका था। श्याम अभी तक निवृत्त

नहीं हुआ था दैनिक कार्यों से। मैंने अवसर अच्छा समझा। उठ खड़ा हुआ और यह कह कर वापिस आने लगा कि अभी तुम व्यस्त हो। दो घंटे बाद पुनः आऊँगा। इस बीच, यदि दिया हुआ काम न निबटाया हो तो उसे भी पूरा कर डालना। कोई बहाना न सुनना पड़े मुझे।

वह सन्न रह गया मेरी बात सुनकर। उसके पाँव एक स्थान पर ही स्थिर हो गये। रास्ते भर मैं यही सोचता रहा कि यदि मेरा नवीन अस्त्र कारगर हो गया, तो अवश्य ही बुरी आदतें छूट जायेंगी उसकी।

ठीक दो घंटे बाद पुनः मैं श्याम को पुकार बैठा। देखा, जनाब किताब-कापी से जूझ रहे हैं। मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया। जो सवाल वह हल कर रहा था, उसे काफी देर तक मैं देखता रहा।

—तुम्हें कुछ कठिनाई पड़ रही है क्या ?

—जी! जी·

—तब निकल क्यों नहीं रहा है। कापी खींच ली। समझाते हुए प्रश्न हल कर दिया मैंने। शायद वह काफी समय से उक्त सवाल लगा रहा था। दूसरे काम के सम्बन्ध में पूछा तो श्याम दबी जबान से बोला—

—नहीं कर पाया। सवाल निकालने में ही सारा समय निकल गया।

क्रोध आ गया था। किसी तरह काबू पाने में समर्थ हुआ।

मैंने निश्चय कर लिया था कि आज के बाद श्याम को घर के लिए कोई काम नहीं दिया करूँगा। सामने बैठाकर एक-एक प्रश्न हल कराऊँगा। हो सकता है कि ऐसा करने में मुझे कुछ अधिक [illegible] पड़े। प्रिन्सिपल साहब का [illegible] अहसान है मुझ पर कि [illegible] भूलूंगा। श्याम को [illegible] स्थिति से आदमी बनाने का यत्न करूँगा।

धीरे-धीरे भी थोड़ा-बहुत काम करने लगा थी। [illegible] था। बहुत समय से मैंने कुछ पढ़ा-लिखा भी नहीं [illegible] कहानियाँ भर लिखी थीं। कुछ प्रकाशित हो

प्रकाशनार्थ पड़ी थी। एजेन्ट-परिवार जिस दिन से मकान छोड़कर चला गया था, पुनः पुराने मकान की शक्ल देखने नहीं आया! सुषमा की कोई खास सहृदया-सहेली भी वहाँ नहीं रहती थी। फलतः उसके आने की भी कोई गुंजाइश नहीं थी। एक बचा-खुचा मैं ही था, जो प्रतिक्षण उसे देखने को लालायित रहता था। आते-जाते दिनेश से अक्सर भेंट हो जाती थी। वह अक्खड़ इतना था कि उससे किसी तरह की बातें करते संकोच मालूम पड़ता था। अवस्था में दिनेश से मैं बड़ा था। उससे छेड़कर मैं बोलना अनुचित समझता था। फिर कोई लाभ भी तो नहीं था।'''सुषमा क्यों इतने ही समय के लिए मेरी कल्पना की उड़ान में थी?

सुषमा एक दिन नॉवल्टी सिनेमा के सामने दिखाई पड़ गयी। 'मुसाफिर' पिक्चर लगी थी। उसकी माँ और कोई युवती भी उसके साथ थी। मैं किसी आवश्यक कार्य से उधर गया था। सुषमा ने मुझे देखा था कि नहीं, नहीं मालूम। एजेन्ट साहब ने जरूर देख लिया था मुझे। वे मुखातिब हैं, अतएव मैंने हाथ जोड़ दिये। अभिवादन का बिना प्रत्युत्तर दिये, एजेन्ट साहब ने अपना मुँह फेर लिया। लगा, जैसे बिजली कौंध गयी हो। हताश धौंकनी-जैसा कलेजा थामे आगे बढ़ गया! समुद्री ज्वर-भाटे मन में लहराने लगे। इच्छा हुई कि सुषमा के बारे में कुछ भी सोचना छोड़ दूँ। जिस लड़की के पिता मुझे इतना नीच एवं असंस्कृत समझते हों, उस खानदान के प्रति मेरे हृदय में इज्जत ही क्यों हो?

पहले भी एजेन्ट साहब ने अनेक बार मेरा अनादर किया था। शूल की तरह जो बात आज मेरे रोम-रोम में चुभ गयी थी, उसकी टीस असीम एवं अविस्मरणीय थी। मौसम सुबह से अच्छा था। मेरा सिर फिर भी भट्टी की तरह धधक रहा था। शरीर निष्क्रिय-सा हो गया था। दस मिनट पहले जहाँ मैं स्वप्न की दुनिया में खोता-उतरता एवं चढ़ता चला जा रहा था, वहीं इस वक्त मेरी हालत कटे पेड़ जैसी हो गयी

थी। कलेजा द्रुतगति से धड़क रहा था। खून हाथ-पैर में जैसे जम गया था। थकान महसूस करने की वजह से विक्टोरिया-पार्क की एक खाली बेन्च पर लम्बा लेट गया। सुषमा मुझे, दुश्मन से ज्यादा भयकर दिखाई पड़ने लगी। संकल्प कर लिया कि भविष्य में, सुषमा की तरफ देखना तो हराम; उसका नाम तक जुबान पर नहीं आने दूँगा। समझ लूँगा कि सुषमा मेरे लिए मर गयी और उसके लिए मैं। व्यर्थ ही इतने दिन उसके विषय में सोच-सोचकर दिमाग खराब करता रहा। उसकी ओर ध्यानाकर्षित न कर, यदि यही चिन्तन-शक्ति किसी दूसरी तरफ खर्च की होती, तो कितना लाभ होता मुझे। अब मैंने पैर ऊपर उठा लिये थे। स्वगत प्रार्थना करने लगा—

—हे भगवन्! आज तक मैंने आँखों पर पट्टी बाँध ली थी। दीवाना बनकर अपना अमूल्य समय बर्बाद कर रहा था। तू कितना नेक है। आज मेरे भ्रम का पर्दा तूने हटा दिया। मैं विश्वास दिलाता हूँ तुझे कि सुषमा के परिवार और स्वयं सुषमा से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। सुषमा ने यद्यपि मेरे साथ कभी कोई प्रत्यक्ष बुराई नहीं की, पर जब उसके संस्कार बुर्जुआ हैं, तो अपनाया कैसा? बाप का असर बेटी पर नहीं पड़ेगा, तो किस पर पड़ेगा आखिर!

आलस्य के बादल छँट गए थे। पार्क के बाहर निकला, तो देखा नौ बज चुके हैं। घर पहुँचकर माँ से क्या कहूँगा? झूठ!...नहीं-नहीं! सच-सच सब-कुछ बता दूँगा। उन्हें भी तो पता चल जायगा कि आदमी बड़ा बनकर किस तरह बदल जाता है। छोटों से दुआ-सलाम करते भी वह झेंप सकते हैं। मगर इसलिए कि समकक्ष रईस आदमी यह न समझ बैठें कि उनका परिचय निर्धन व्यक्तियों से भी है।

दिल्ली से वापस आने में पूरे सताइस दिन लगे थे प्रिन्सिपल साहब को। ट्यूशन पढ़ाने के उद्देश्य से जब मैं उनके घर पहुँचा, तो उन्होंने अत्यन्त स्नेहिल दृष्टि से देखा। बैठते ही माँ के बारे में पूछने लगे। मैंने सारी बातें विस्तार से उन्हें बता दीं। कहने लगे—

—सचमुच डॉ० राव ने काफी परिश्रम से केस सम्भाला। सार्वजनिक अस्पतालों में बीस प्रतिशत से अधिक मरीज, सहकर्मियों की लापरवाही एवं असावधानी के कारण जिन्दगी से हाथ धो बैठते हैं। हम कहने के लिए ही आजाद हुए हैं। स्वतन्त्रता का मूल अर्थ अभी तक नहीं जानते !···

उस दिन श्याम को ज्यादा देर तक नहीं पढ़ा सका। दो मास की लम्बी छुट्टी के बाद स्कूल खुलने वाला था। कल तक सारा काम निर्विघ्न चलता गया। जब चाहता, भोजन करता और आगत-कार्य निबटाता ! अब पुनः पढ़ाई की तरफ ध्यान आकर्षित करना पड़ेगा ?···

रात से मेह की जो झड़ी शुरू हुई, तो बंद होने का नाम नहीं ले रही थी। भीगते-भीगते किसी प्रकार स्कूल पहुँचा। मुश्किल से बीस-बाइस विद्यार्थी उपस्थित थे। गरीब अभिभावकों को अपने बच्चों के लिए जितनी चिन्ता रहती है उतनी पैसे वालों को नहीं। दुर्भाग्यवश यदि निर्धन छात्र एक साल भी फेल हो जाता है, तो उसकी दीर्घ साँस कलेजा फाड़ने लगती है। वह सोच नहीं पाता कि क्या करे ?···संक्रामक बीमारियों का अलग बोलबाला था। घर-बाहर सब आतंकित थे ! लोगों के सैकड़ों सुझाव रोज अखबारों में प्रकाशित हो रहे थे। स्कूल, सिनेमा आदि बंद कराने का यत्न जारी था। दो-ढाई मास बाद तो स्कूल-कालेज

चुने थे। उस पर एक मास की छुट्टी और। इंफ्ल्यूएंजा-नामक बीमारी थी। कुछ लोग फ्लू नाम से भी पुकारने लगे थे। देश में ही नहीं। विश्व भर में लोग उक्त भीषण रोग से दुःखी थे। कोई अच्छी रामबाण दवा या इंजेक्शन ईजाद नहीं हो पायी थी। यद्यपि पेटेन्ट औषधि की खोज में बड़े-बड़े डाक्टर संलग्न थे। बीमारी के अलावा और किसी प्रसंग की चर्चा नहीं होती थी। अपनी-अपनी जान बचाने में सब व्यस्त थे। स्कूलों में उपस्थिति इतनी कम रहती थी कि कोई मास्टर अपने विषय को आरम्भ करते सकोच करता था।

अचानक मेरे कान में भनक पड़ी कि दिनेश भी फ्लू से पीड़ित है। डॉक्टर-पर-डॉक्टर आ रहे हैं। लाभ रत्तीभर नहीं है। स्कूल के विद्यार्थियों ने एक दिन निश्चय किया कि दिनेश को घर चलकर देखा जाय। वह अनुत्तीर्ण हो गया था तो क्या? नवीं में तो वह साथ पढ़ता था। पहले असमंजस में पड़ गया। सबके संग मैं भी जाऊँ कि नहीं? कहाँ मैं यह निश्चय कर चुका था कि एजेन्ट महोदय का मुँह तक नहीं देखूंगा। अधिक दिन भी नहीं बीतने पाये थे फिर भी चला ही गया सबके साथ।

तबीयत काफी शोचनीय थी। विद्यार्थीगण क्यू बनाकर खड़े थे। घररामी ने बताया कि कोई इस वक्त मिल नहीं सकता। वह पूरी बात कह भी नहीं पाया था कि सुषमा आ गयी। उससे जब मेरी आँखें चार हुईं, तो न चाहने पर भी सकुचने-सकुचने सामने खड़ा हो गया। मुझे विश्वास था कि सुषमा जरूर कुछ पूछेगी। स्वयं कुछ नहीं बोली वह पर उसकी गुमसुम आकृति ने मेरा मुँह बलात् खोल दिया—

—दिनेश की तबीयत आज कुछ अधिक खराब है क्या?

—हूँ!

—डॉक्टर बैठे हैं?

—हाँ।

थी। मैं कुछ और भी पूछना चाहता था। विचित्र रंग-ढंग देखकर मैं मौन हो गया।

—तब हम लोग जा रहे हैं!...

सुषमा ने इसका भी कोई संगत उत्तर नहीं दिया।

लड़कों के साथ बाहर निकला, तो अपनी प्रकृति के अनुसार वे सब छींटा-कशी करने लगे। माना, सुषमा बड़ी हो गयी थी। फिर भी उससे बातचीत करना अनुचित तो था नहीं। यह सभी को मालूम था कि पहले सुषमा मेरे ही मकान के सामने रहती थी। उससे बात-चीत करना अनुचित तो नहीं? लड़कों की किसी बात का मैंने उत्तर नहीं दिया। कृत्रिम हँसी बिखेरता हुआ किसी प्रकार घर लौट आया। माँ को दिनेश की तबीयत के बारे में बताकर उदास चेहरा लिए अपनी कोठरी में लेट गया। आप-से-आप मेरे मुँह से दिनेश के लिए दुआएँ निकलने लगीं। अनन्तर सुषमा मेरे सामने खड़ी हो गयी। वह कितनी उद्विग्न रहती है आजकल? कितना चाहती है वह दिनेश को! खुदा-न-ख्वास्ता बीमारी बढ़ गयी, तो क्या होगा? एजेन्ट साहब से लेकर घर के सभी प्राणी निष्क्रिय-निष्प्रभ हो जायेंगे। इसके बाद ही मेरे सम्मुख अमेरिका, रूस और ब्रिटेन का नक्शा घूमने लगा। परीक्षण-मात्र से जब सारी दुनिया इस तरह परेशान है, तो बम गिराने से क्या लाभ? आज रूस और अमेरिका को लोग अत्यधिक समृद्धिशाली समझते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों ये इतना प्रसन्न हैं? मनमानी करने पर आमादा हैं। जनतंत्र को मिटा कर क्या ये अपना अस्तित्व कायम रख सकते हैं? जिनके सामूहिक प्रयास से आज ये देश, अपना मस्तक गर्व से ऊंचा किये हैं—शायद भूल गए हैं कि साधारण जनता की सह-आवाज के बिना सारे मन्सूबे छिन्न-भिन्न हो जायेंगे। आज हर देश में जो नयी-नयी असाध्य बीमारियां फैलती जा रही हैं, उनका मुख्य कारण बम-परीक्षण ही तो है।

संकल्प कितना क्षण-भंगुर होता है। कहाँ तो मैंने सुषमा के घर

तक जाने की कसम खा ली थी। अब पुनः उसके घर जाने लग गया था। बार-बार अपने को धिक्कारता कि किसी अमीर के लिए सम्वेदना प्रदर्शित करके ही क्या होगा? स्वगत सोच-कह जरूर गया किन्तु अन्तर्मन कोई उत्तर नहीं दे पा रहा था। सुषमा की तत्कालीन भाव-भंगिमा वस्तुतः द्रवित करने योग्य थी। क्षणिक निश्चय क्या मुझ-जैसे लोगों के लिए उचित हो सकता है?

देखा जाय, तो मुझ-सा भावुक और संकल्प-विकल्प करने वाला व्यक्ति जल्दी ढूंढे नहीं मिलेगा। उस दिन एजेन्ट साहब ने मेरे अभिवादन का तिरस्कार किया, तो कितना बुरा लगा मुझे। दिनेश की तबीयत का समाचार सुनकर मैं सहपाठियों के साथ आखिर गया कि नहीं? सभी तरह के विचार एक साथ मेरे दिमाग में चक्कर काटने लगे। व्यावहारिक जीवन में जब तक आदर्श और सिद्धांत ढाले-उतारे नहीं जाते, तब तक मिथ्या समझना चाहिए सब कुछ। जिसे एक दफे पकड़ो, उसे यथाशक्ति मजबूती से पकड़े रहो। सुषमा को देखकर पहले दिन जो धारणा मैंने बनायी थी, उसे तूफान के एक थपेड़े से ही मिटा दूं? फिर अभी सुषमा से बात ही क्या हुई थी। जब दो असामान्य व्यक्ति एक स्तर पर आने की कल्पना करते हैं, तो संघर्ष, पीड़न और विद्वेष का मुकाबिला करना ही पड़ता है। सर्वप्रथम तो यह निश्चय करना है कि सुषमा क्या वस्तुतः मेरे लिए प्राप्य है? यदि है, तो दुनिया की ताकतें मेरे आगे झुकने को विवश होंगी। बहरहाल मानापमान को तिलाजंलि देकर मुझे लक्ष्य पूर्ति के लिए अग्रसर होते रहना है। तो क्या मैं पुनः निश्चय से डिगूं?

अकस्मात् पुनः नवस्फूर्ति का संचार होने लगा। दिनेश को देखने का लोभ संवरण नहीं कर सका। स्कूल बन्द था ही। अस्वाभाविक कदम बढ़ाता हुआ सुषमा के घर पहुँच गया। बेहिचक ऊपर कमरे में चला गया। सामने के कमरे में दिनेश की माँ किसी काम में लगी थीं। मैं सम्मुख खड़ा हो गया, तो वह मेरी ओर देखने लगीं।

—कहो अमर। अब तो तुम दिखाई ही नहीं पड़ते।

—जी ! बीच में एक दिन आया था। दिनेश की तबीयत खराब होने के कारण बाहर से ही लौट गया था।

—क्यों ? तेरे लिए कोई रोक-टोक थी नहीं। उस दिन तो उसकी क्लास के सब विद्यार्थी आये थे। उसे होल हो जाता, इसलिए नहीं आने दिया।

बहुत-सी बातें यों सुन गया, जैसे उसका कोई उत्तर देना मेरे लिए मुश्किल हो।

—दिनेश।···मेरे मुंह से इतना भर निकला।

—हाँ, हाँ चले जाओ। सुषमा उसी के पास बैठी है। कभी-कभी आ जाया करो।

—आया करूँगा, माता जी ! उन्हें इसी नाम से पुकारता था। सीढ़ियाँ चढ़ कर जिस कमरे में दिनेश लेटा था, धीरे-धीरे चला गया। कमरे में प्रविष्ट होते देख कर जितना आश्चर्य दिनेश को नहीं हुआ, उससे अधिक सुषमा को। उसकी विस्मयजनक मुखाकृति और आँखों के उतार-चढ़ाव से ऐसा ही आभासित होता था।

नम्र स्वर में मैंने दिनेश से उसके हाल-चाल के विषय में पूछा।

छोटा-सा सीमित उत्तर देकर वह चुप हो गया।

वर्षा की संभावना थी। अधिक देर तक बैठने से यहाँ कोई लाभ नहीं था। पुनः नमस्ते करके मैंने दोनों से विदा ली। दिनेश अत्यधिक क्षीण हो गया था। वह तो सम्पन्न था। छोटे-बड़े सभी डॉक्टरों को दिखाया जा सकता था। हम जैसों पर अचानक उक्त मुसीबत आ जाय, तो कदाचित् उठना मुश्किल हो जाय।

कोई खास काम न रहा, तो दोपहर को पुस्तकें पढ़ लेता था। अचानक किसी ने दस्तक दी, तो अनमना-सा उठ बैठा। सामने पोस्टमैन को देखकर मेरे विस्मय की सीमा न रही। मनीआर्डर का नाम सुनकर फार्म मैंने हाथ में ले लिया। 'युगांतर' में जो कहानी छपी थी, उसका ५) रु० पुरस्कार आया था। इस तरह अकस्मात् पारिश्रमिक प्राप्त होना मेरे लिए अप्रत्याशित बात थी। रुपये लेकर जब किवाड़ बन्द कर दिये,

तो मेरी इच्छा हुई कि माँ को भी यह खुश-खबरी सुना दूँ। अन्दर से कुछ ऐसा हुआ कि उनसे मैं एक शब्द न बोल सका। पुनः यथास्थान बैठ गया। विश्व के महान् साहित्यकार एक-तरफा मेरी प्रकाशित कहानी से लोहा लेने लगे। तड़ितवेग से यही विचार आता-जाता रहा कि एक दिन मैं भी अच्छा कहानी-लेखक बनूँगा। मार्ग में बाधायें तो आयेंगी ही! कुछ लोग मेरी कृतियों को तुच्छ समझकर रद्दी की टोकरी तक में फेंक देंगे। ऐसे वक्त मेरे मस्तिष्क में उन साहित्यकारों के स्मरण पुनर्जन्म लेने लगे, जो आज सुप्रसिद्ध लेखक हैं और प्रारम्भ में कौड़ी के मोल बिका करते थे। मुझे दूसरों की कटु आलोचनाओं का किंचित् डर नहीं था। विश्वास-सा हो गया था कि जो समीप से, जिन्दगी का उतार-चढ़ाव आँकना परखना है, वह असफल नहीं हुआ करता। जिसे स्वयं चोट नहीं लगती, वह परायी चोट का कभी अहसास नहीं कर पाता। सच्ची अनुभूति और ईमानदारी का पुट जहाँ कहीं रहता है, वहाँ का धरातल अत्यन्त नम्र तथा नैसर्गिक मालूम पड़ता है। आज इधर, इतना खो गया था मैं कि घर की सुध-बुध नहीं रही। लग रहा था कि सवेग के वशीभूत मैं किसी नदी मे, नाव पर बैठा, अकेला बहा जा रहा होऊँ।...

बहुत-दिनों से विमल का कोई हाल-चाल नहीं मिला था। एक दिन रिक्शा-मालिक के यहाँ गया, तो विदित हुआ कि दो दिन से विमल बीमार है। लू चल रही हो या फ्लू! बिना-फिक्र वह रिक्शा चलाता है। वह बीमार नहीं पड़ेगा, तो कौन? यहाँ उसे कोई पानी देने वाला तक तो है नहीं। अपने को बीसों बार धिक्कारा! भागता हुआ उसके गंदे मकान में पहुँचा। उसे मकान कहना ठीक नहीं फिर भी उसे इसलिए भी मकान कहना पड़ेगा कि वह बिलकुल कोठरी नहीं था। विमल जिस मकान में रहता था, उसमें छोटे-छोटे आठ कमरे और थे। किवाड़ खोलकर मैं अन्दर घुसा, तो देखा उसका समस्त शरीर तवे की तरह जल रहा है। बुखार तेज था। विमल कदाचित् इस स्थिति में नहीं था कि मैं उससे जो पूछता, वह कायदे से हर बात का उत्तर देता। तुरन्त वापस लौटने का आश्वासन देकर मैं डॉक्टर के यहाँ पहुँचा। हाल-चाल बताकर दवा ले आया। पैसे मेरे पास पूरे थे नहीं। कम्पाउन्डर परिचित था। उससे कहकर दवा उधार ले आया। विमल उक्त परोपकार के लिए मुझे मन-ही-मन धन्यवाद दे रहा था। यदि वह प्रकृतिस्थ होता, तो सम्भवतः कुछ मैं भी कह देता।

उसके अप्रतिम साहस से मैं दंग था। पता नहीं कितने दिन से वह इसी तरह बुखार से लड़-झगड़ रहा था। एक बार मेरा कंठ इतना भर गया कि मैं उबलते आँसू न रोक सका। किसी तरह स्ववश हो, विमल के लिए थोड़ा-सा दूध खरीद लाया। अपनी जरूरत के लिए मैंने कभी पैसा उधार नहीं माँगा था। मेरा एक दूर का परिचित केराना का व्यापार करता था। उससे कुछ पैसे उधार लेकर दूध-मुसम्बी खरीद लाया।

पहले तो ना-नू करता रहा। मेरे अटूट आग्रह से उसने दूध पी लिया। कुछ देर बाद दो खुराक दवा भी पिला दी! दवा पीने से वह कुछ चैतन्य हो गया था। धीरे-धीरे बुखार के विषय में मुझे अनेक बातें बता गया। एक बार मैंने सोचा कि उसने संकट के समय मुझे क्यों नहीं बुला लिया। अपनी गल्ती महसूस कर मैं चुप हो गया। हलक तक आया स्वर बाहर नहीं निकला। अचानक विचार उठा कि यदि विमल मेरे साथ रहने लगे, तो क्या हर्ज है? आखिर तो मैं भी रिक्शा चालक रहा हूँ। सम्भव है कि मेरे साथ से उसे भी रिक्शा चलाना बंद कर देना पड़े। इच्छा हुई कि तत्काल विमल से मन्तव्य प्रकट कर दूँ। कमजोरियाँ इतनी थी, कि कुछ भी नहीं कह सका। काफ़ी समय बीत गया था। मनमें आशा लेकर वापिस आ गया। विमल की दिक तबीयत से माँ को भी क्लेश हुआ। जिन दिनों माँ अस्पताल में पड़ी थी, विमल बे-नागा उनसे मिलने जाता था। जब मैंने माँ से कहा कि विमल को भी अपने यहाँ टिका लूँ, तो तुरन्त उनके मुंह से कोई बात नहीं निकली। कुछ रुककर दबी जबान से स्वीकारात्मक सिर हिला दिया। मैं निश्चय कर ही चुका था। तुरन्त नहीं, तो देर-सबेर रिक्शा चलाने जैसा घृणित पेशा उसकी जीविका का साधन नहीं रहेगा। उसका मस्तिष्क आज जिस तरह की जड़ता का अनुभव कर रहा है, उसका प्रमुख कारण कदाचित् रिक्शा ही है। रिक्शे ने उसे बिलकुल अशक्त बना दिया है। हृष्ट-पुष्ट नवयुवक रिक्शा चलाकर क्या कभी सभ्य-सुसंस्कृत बन सकते है? साल भर का अनुभव मुझसे यही कहता है कि उक्त पेशा अति शीघ्र निषिद्ध कर देना चाहिये। विमल अभी मुश्किल से १४ वर्ष का है। उसकी धँसी आँखें और उभरी हड्डियाँ किस भविष्य की द्योतक हैं? विमल जैसे हजारों-लाखों मौत का सामान बन रहे हैं। इनका जीवन भी कुछ महत्व रखता है।...

उभरते हुए नवयुवकों को गर्दिश में देखकर कोई संतोष की सांस नहीं

ले सकता। जिस पर किसी की छाया हो, केवल वही समाज का अंग नहीं है। निरीह, बेसहारा एवं अभागों के लिये भी संबल की जरूरत है। असलियत से आँख फेर कर आज हम लम्बी डगर पकड़ने के आदी बन गये हैं। प्राथमिकता दी जानी चाहिये इस ओर।

विमल को लेकर मैं बहुत कुछ सोच गया। उफनते फेन को आखिर कब तक दबाया जाय। निश्चित था कि विमल से साथ रहने का आग्रह करूँगा, तो ना-नू करने के बाद राजी हो जायगा। कुल जमा दो ट्यूशन करता था। तीस प्रिंसिपल साहब प्रतिमास दे देते थे और पचीस नैंटियाल बाबू से मिल जाते थे। बड़े घरानों में ट्यूशन प्रायः दिखावटी होते हैं। स्कूल में जिस तरह १० से ४ तक लड़के का पढ़ आना आवश्यक समझा जाता है, उसी भाँति एक मास्टर का घन्टे-डेढ़-घन्टे पढ़ा आना। साहब बहादुर पढ़ते क्या हैं? स्कूल से कब पीरियड कट करते हैं? अभिभावकों को कोई मतलब नहीं। होम ट्यूटर जिस दिन नहीं पहुँच पाते, उस दिन उसे काफी शर्मिन्दा होना पड़ता है। उनकी इच्छा से पाँच मिनट बाद ही लौट आना पड़े। तबीयत नाशाद होने का छोटा कारण बताकर अदृश्य हो जाते हैं? अक्सर लोग पूछने तक लगते हैं कि आखिर, आया क्यों नहीं मैं? दो नली बन्दूक छोड़ देते हैं। क्रोध मन्ने आये। निगल जाने के सिवा और कोई चारा तो रहता नहीं।

विमल करीब-करीब स्वस्थ हो गया था। मैंने प्रस्ताव रखा, तो वह एकटक मेरा मुँह देखता रहा।

—कोई बात सोचने लगे?

—नहीं।

—फिर, कुछ कहते क्यों नहीं?

—कि···तुम्हारे संग मेरा रहना कहाँ तक उचित है?

—ये सब खूब समझ चुका हूँ मैं। हफ्तों बुखार में बरति रहे। मुझसे पूछो कि क्या नहीं सहा।

—अब ठीक है भाई ! कितनी बार बुखार आया और चलता बना। यदि बुरा मानो तो निवेदन करूँ कि पहली बार ज्वर आने पर मैंने दवा पी है। तुम आ गए, तो वह भी। वरना, स्वेच्छा से तो भगवान् के आसरे पड़ा रहना।

—तुम, मुझे गैर तो नहीं समझते विमल।…

इतना कहते ही उसकी आँखों से आँसू छलछला उठे। मुझे पता नहीं क्या हो गया ? उसे घुटते-हिचकते देखकर स्वयं स्तब्ध रह गया। स्वस्थ होते ही मैं उठ खड़ा हुआ। अधिक समय तक समीप बैठना अच्छा नहीं लग रहा था मुझे।

—तो, चलता हूँ अब। शायद शाम को पुनः भेंट हो।…

कोठरी के बाहर पैर रखे, तो मुझे लगा, जैसे मोक्ष आ गयी है। रह-रह कर आँसू बहाने वाली बात समस्त शरीर में सिहरन पैदा करने लगी। कितनी आत्मीयता टपक रही थी—उस वक्त विमल की रग-रग में। प्रायः भावुकता की परिणति लाँघ जाता है मनुष्य। रो पड़ने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह जाता उस समय। इतना विश्वास था कि विमल के हृदय में मेरे प्रति अपार श्रद्धा है। अनायास छोटी-सी बात पर उसका रो पड़ना घनिष्ठता का ही द्योतक था। गरीब के पास देने के लिए पैसा नहीं होता, वहीं उसके पास हृदय जैसी इतनी बड़ी चीज होती है, जिसकी कोई तुलना नहीं।

जब मैं विमल का सामान बाँध रहा था, उस वक्त भी वह काफी गुमसुम था। शायद उसे लज्जा प्रतीत हो रही थी। उसके मुँह से अन्तर्वेदना निकल ही तो गया—

—इस कोठरी में किसी तरह पड़ा रहता था। देख ही रहे हो—न ढंग के पहनने लायक कपड़े हैं और न ही ओढ़ने-बिछाने के लिये चादर। यदि इससे भी अधिक शर्मिन्दा करने पर उतर आये हो, तो फिर मुकर ही कैसे सकता हूँ।

—:o:—

मैं सोच रहा था कि दिनेश ठीक हो गया होगा। यही कारण था कि कई दिन बीत जाने पर भी मैं उसके घर नहीं गया। विमल की बीमारी और पुनर्व्यवस्था में फँस जाने से मैं सब कुछ भूल गया। विमल को घर ले आया तो अचानक एक दिन दिनेश से मिलने की इच्छा बलवती हो उठी। यह अक्सर मैंने अजमाया है कि जब कहीं कुछ अशुभ होना होता है, तो गन्तव्य स्थान की तरफ पहुँचने के लिए पैर मचलने लगते हैं। जरूर ऐसी ही बात थी। अन्यथा दिनेश की असामयिक मृत्यु के उपरान्त ही मुझे क्योंकर उसकी याद सताती। जैसे, प्रायः बिना किसी से कुछ कहे-सुने सुषमा के घर चला जाता था, उसी तरह आज भी मैं भीतर चला गया। कोई अशुभ आशंका रह-रहकर मुझे हतचित्त कर रही थी। किसी तरफ शोर-गुल नहीं हो रहा था। मैं दो कदम आगे बढ़ाता, तो तुरन्त मेरा कलेजा धड़कने लगता था। अभी तक मेरे ध्यान में यह बात नहीं आ पायी थी कि कहीं दिनेश यहाँ से अन्यत्र तो नहीं चला गया है। इसी उधेड़-बुन में सैकड़ों इधर-उधर की बातें सोच रहा था। अकस्मात् जैसे किसी ने मुझे चौंका दिया। सफेद कोट पहने बैंक का चपरासी मुझे उक्त स्थित में चुपचाप खड़ा देख एक-टक देखने लगा। वातावरण की वीरानगी समाप्त करने के लिए मैंने ही कुछ कहना-पूछना उचित समझा।

उसके निष्प्रभ चेहरे और घबड़ाहट भरी मुख-छवि ने मुझे विस्मय में डाल दिया। निश्चय हो गया कि जरूर कोई खराब बात हुई है।

सब कुछ समझकर भी जब मैंने कुछ पूछने के लिए जुबान हिलानी

चाही कि उसके पूर्व ही चपरासी ने अपना वाक्य पूरा कर दिया। बस रात छोटे बाबू भगवान् के पास चले गये। आगे, कुछ और सुनने की सामर्थ्य मुझमें नहीं रही।

गुम-सुम-सा वापस लौट आया। यह एक बार भी नहीं सोचा कि ऊपर जाकर मुझे मुखमा आदि से मिल लेना चाहिये। दुःख इसका रहा कि कल क्यों न मैं यहाँ चला आया। सच पूछो, तो मैं गुनहगार हूँ। अन्य दिनों की अपेक्षा कल का दिन कितना मनहूस बीता होगा यहाँ। गमज़दा लोगों से किस मुँह से मिलूँ ? माँ को सूचना मिलती, तो वह माँ आती। मुझे उन्हें अपना संकल्प तोड़ना पड़ता। लौटकर घर आ गया। निरन्तर सोचता यही रहा कि मुझे अन्ततोगत्वा मिलना जरूरी था। पहले खबर नहीं मिली तो क्या हुआ ? अब तो मालूम हो गया है। मेरे जाने से हम-दर्द तो समझेंगे। कितना बेवकूफ हूँ। अन्दर तक जाकर वापिस आ गया।

दूसरे दिन पुनः वहाँ जाने को साहस बटोरा। अगर एजेन्ट साहब से मुठभेड़ हो गयी, तो क्या होगा ? मामी (एजेन्ट साहब की धर्मपत्नी का नाम) ही एक ऐसी सहृदया हैं, जो मुझे देखते ही रो पड़ेंगी और सब कुछ बता जायेंगी। उनके साथ यदि मैं भी रोने लगूँगा, तो मुश्किल हो जायगी। मुझे यथाशक्ति धैर्य से काम लेना होगा।

टालता-टूलता किसी प्रकार पहुँच ही गया मैं मामी के पास। उनका उतरा-उतरा-सा मुँह, रूखे-सूखे बाल और मटमैली किनारदार धोती देख कर शीघ्र विश्वास नहीं हुआ कि यह मामी हैं। माँ से अधिक ममता किसी की नहीं होती ? मौत तो दर-किनार, बच्चे को जरा-सी चोट लग जाती है, तो उसका कलेजा फटने लगता है। फिर जो-भी वह अपने नन्हे-मुन्ने को काल का ग्रास होते कैसे देख सकती है ?

वहाँ जाकर निस्पन्द पलंग के करीब खड़ा हो गया। मामी के सिवा उस कमरे में और कोई नहीं था। वह सोचाकुल हो गयी थीं। पाँच मिनट तक मैं निस्तब्ध खड़ा पैर के अँगूठे से ज़मीन घिसता रहा

एक बार इच्छा हुई कि पुनः वापस लौट चलूँ। मेरी उपस्थिति से भाभी को दुःख ही होगा ! कुछ पीछे हुआ। दरवाजे की चुर-मुर हुई कि सामने सुषमा दिखाई पड़ गयी। वह भौचक मुझे देखने लगी ! उसका मेरी तरफ इस तरह घूरना शायद उचित ही था। जिस दिन दिनेश अपने जीवन की आखिरी साँस गिन रहा था उस दिन क्यों मैं बेखबर रहा ? सुषमा शायद विश्वास भी न करे; मेरे सफाई पेश करने से। उसकी विकृति मुख-छवि देखकर मैं एकटक यथास्थान देखता रहा। पास से गुजरी, तो मैं कुछ कहना चाहकर भी पूर्ववत् मौन साधे रहा। कुछ प्रकृतिस्थ हुआ, तो इतना भर मुँह से निकला—

—कैसे क्या हुआ सुषमा ! एक दिन पहले तो बिलकुल ठीक था न ?···मेरा इतना कहना था कि उसकी आँखें झपकने लगीं। किसी ने घाव करोंच दिया हो जैसे !

पाँच-एक मिनट सुषमा निरुत्तर खड़ी रही।···

—भाभी वहाँ हैं ! कहकर वह सामने वाले कमरे में दाखिल हो गयी। मुझे क्रोध आया अपनी मूर्खता पर। व्यर्थ क्यों मैंने इतनी बातें सुषमा से कीं ? भाभी से पूछना था ये सब ! और यदि पुनः चोरों की तरह चला जाता, तो अवगत होने पर कितना संताप होता भाभी को !

अब उन्हें कुछ खुटका हो गया था। सुषमा के लघु सम्बोधन ने कदाचित् भाभी को गहन चिन्तन से परे हटा दिया था।

मुझे देखकर अन्दर बुला लिया उन्होंने।

—तुम्हारा दोस्त तो बिना मिले-जुले ही चला गया।

—दो दिन पहले तो तबीयत बिलकुल ठीक थी। मुझसे बातें भी हुई थीं। अच्छे भगवान् को भी पसंद आ जाते हैं। सच पूछो, तो ईश्वर निर्दयी हो गया है भाभी।

—ऐसा मत कहो भैया। करम फूटे थे हम लोगों के। सब पूर्व जन्म के संस्कार थे।

—उनकी सरस अनुभूत वाणी के आगे मेरा मस्तक एक तरफ रह

गया। परमेश्वर के विरुद्ध मैं जो कुछ उगलना चाहता था, वह सब मामी ने सोख लिया। ईश्वर के प्रति अर्पित चिर आस्था कोई भी कम नहीं कर सकता था। उनके रोम-प्रतिरोम में सर्वनियन्ता का वास था। मामी के स्थान पर उस वक्त यदि सुषमा होती, तो निःसंदेह मैं कुछ अतिशयोक्ति बोल जाता। आवेश में इतना सोच गया। जब स्वयं अपनी ईश्वर-भक्ति की कल्पना करने लगा, तो मेरे जाग्रत होश-हवाश गुम से हो गए।

बीच में ईश्वर-आक्षेप की चर्चा न छिड़ी होती, तो दिनेश का प्रसंग आदि से अन्त तक दोहराती। एक माने में ठीक भी हुआ। उसकी पूर्व स्मृतियों से अभिभूत हो जो कहीं वह रोना शुरू कर देती, तो मैं दिलाशा दे-देकर हार जाता। पर, उनके आँसू न रुकते। सुनने वाला सब सुन लेता। मुसीबत फिर भी सारी सुनाने वाले की थी। एजेन्ट साहब किसी काम से ऊपर आये थे। मुझे मामी से बातें करते देखकर वह आगे चले गए। चपरासी रामू से उन्होंने मामी को बुला लिया। उनके उठने से पूर्व मैं खुद ही उठ खड़ा हुआ।

मैं सीढ़ियाँ उतरने-गिनने लगा। उस वक्त अचानक सुषमा का स्मरण हो आया। वह मामी के कमरे में फिर आयी क्यों नहीं? बार-बार सोचता रहा। मनोविश्लेषण के बाद भी मैं उसकी मन की गहराई न माप सका! दिनेश की मृत्यु ने यदि उसे इतना खामोश कर दिया है, तो क्या आश्चर्य? इस तनहाई भरे घुटे वातावरण में यदि वह और खपाये रहेगी अपने को, तो दिमागी पेंच न ढीले पड़ जायेंगे उसके? एक बार साक्षात् हो जाता, तो अवश्य ही इस सम्बन्ध में कुछ समझाता। पर, वह कुछ समझना चाहती कि नहीं? कौन जाने?

पन्द्रह दिन की अतिरिक्त छुट्टी के बाद स्कूल पुनः खुल गया था। लड़कों में दिनेश की चर्चा सर्वप्रथम थी। थोड़ी-बहुत मारपीट कौन नहीं करता? दिनेश के दो-चार घनिष्ठ धनी साथी, जो गर्मी की छुट्टियों में मंसूरी, नैनीताल गए थे, मृत्यु के दुखद समाचार से बेहद दुखी जान पड़ रहे थे। कुछेक का यह निचोड़ था कि दिनेश भी अगर किसी ठण्डी जगह चला जाता, तो फ्लू जैसी बीमारी उसे कदापि नहीं चिमटती! एक बात समाप्त कर नहीं पाता था कि दूसरा खण्डन-मण्डन करने लगता था। आदमी कहीं रहे मौत एक पल की भी प्रतीक्षा नहीं करती।

प्रार्थना स्थल में जब सब विद्यार्थी एकत्र हुए, तो कुछ आपस में कहने लगे कि शायद, आज भी स्कूल, शोक-प्रस्ताव पास करने के बाद बंद कर दिया जाय। लड़कों की उक्त फूहड़ बातों से मेरा मन इतना खट्टा हो जाता कि पास खड़े होने तक की इच्छा नहीं होती थी! यही एक ऐसा वक्त है, जब अनिच्छा होने पर भी प्रत्येक को एक-दूसरे की फुसफुसाहट सुननी पड़ती है। प्रार्थना हारमोनियम के साथ शुरू होती थी। जो विद्यार्थी प्रार्थना कराते थे, उनमें से कुछ स्कूल छोड़ चुके थे और कुछ टी० सी० लेकर अन्यत्र चले गए थे। अक्सर मैं भी प्रार्थना कराने के लिए बुला लिया जाता था। स्वर-माधुर्य तो था नहीं। शब्द-प्रति-शब्द कंठाग्र जरूर थी उक्त प्रार्थना! उस दिन, उक्त श्रेणी के विद्यार्थियों की संख्या स्वल्प थी। सामने देखकर प्रिन्सिपल साहब ने मुझे ही बुला लिया। मना कर नहीं सकता था। ससकोच पहुंच ही गया। प्रार्थना समाप्ति पर सर्वप्रथम दिवंगत आत्माओं को प्रिन्सिपल

साहब ने सान्त्वना-श्रद्धांजलि दी! अनन्तर स्कूल बन्द की घोषणा! कतार-बद्ध विद्यार्थीगण फिर अपनी-अपनी कक्षाओं में चले गए। मैं प्रथम श्रेणी में पास हुआ था। फिर भी अन्य उत्तीर्ण छात्रों की भाँति, कोई खास उत्साह अथवा आनन्द का संचार नहीं हुआ था! सातवें क्लास रूम में मैं आगे की कतार में एक कुर्सी पर बैठा। विमल आजकल मेरी बगल में बैठता था। आगे बैठने से उसे परेशान ही होना पड़ता था। अध्यापकगण अक्सर उससे कह भी देते थे कि उसे कतार के पीछे बैठना चाहिए। फर्स्ट-बेंच के विद्यार्थियों जैसा ज्ञान उसमें था नहीं। मानापमान की उसे कोई चिन्ता नहीं रही। उस पर अक्सर डाँट पड़ती। नीचा मुँह करके सब-कुछ सुन लेता था! यही उसके विशिष्ट गुण थे।

छुट्टी होने पर अब विमल मेरे साथ ही घर आता था। मैंने बहुत चाहा, कि विमल रिक्शा चलाना बन्द कर दे किन्तु वह बात मानकर भी यह आग्रह नहीं माना। रोज जितना कमा पाता, वह माँ के हाथ पर रख देता था। पहले दिन माँ ने प्यार से पूछ लिया। ठीक बात ने कहा है कि माँ की वहीं किसी बात का बुरा नहीं मानता। एक-दो रुपये की मजूरी रोज कर पाता था। मालिक को देने के बाद बमुश्किल इतना ही बचता था उसके पास। पानी-बूँदी के दिन या ऐसे ही किसी मनहूस दिन आठ-दस आने भी उसे नहीं मिल पाते थे। उसके बदन को देखकर मुझे बहुत दुख होता था। रिक्शा मालिकों पर गुस्सा होने लगता कि वे कितने निर्दयी होते हैं। किसी वाला दिन अगर बेहद की निर्भयतापूर्ण धूप बर्दाश्त करे और फूल जैसा देह-भी रखे उसके फूले पाँव। मालिक हर हालत में हाथ फैलायेगा। चोरी करो, डाका डालो या उधार माँगो। उसकी मुराद समय पर मिलनी चाहिए। बस।

मुन्ना ने परीक्षा आठवीं की पास की थी। पता नहीं, उसकी क्या तैयारी किस आधार पर कर रही थी। अन्य विद्यालयों के साथ प्रतियोगिताओं में भी लड़कियों को विशेष सुविधाएँ प्राप्त हैं। उसके ही साथ के बराबर आकर मुझे कुछ-कुछ ईर्ष्या-सी होने लगी। मुन्नी बेचारी

मेरा चाहे भी जैसा रहा हो, किन्तु इस साल मुझे पहले से भी अधिक मेहनत करनी है। फर्स्ट तो आना ही है। मेरिटलिस्ट के लिए भी मेरी यथाशक्ति कोशिश रहेगी। यह तो नामुमकिन है कि सुषमा मुझसे भी अच्छी श्रेणी में मैट्रिक पास हो जाय ?…जिस दिन मुझे मालूम हुआ कि सुषमा भी इस साल हाईस्कूल की परीक्षा में प्रविष्ट होगी, तो मेरा अहं ललकार उठा। क्रोध आया कि मैं भी क्या आदमी हूँ ! इतना बड़ा हो गया अभी तक इन्ट्रेन्स भी पास नहीं कर सका। क्लास में मुझसे कम उम्र के जितने सहपाठी थे, एक-एक कर सब याद आने लगे। सिवा अपने ऊपर खीझ उठने के मेरे पास कोई चारा तो था नहीं। पारिवारिक समस्याएँ मुंह फाड़कर सामने खड़ी हो जातीं, तो तमाम अन्तर्द्वन्द हवा हो जाता था। फिर तो नास्तिक होते हुए भी ईश्वर को धन्यवाद देने लगता कि उसने जो किया, सब ठीक है। परायी चमक अक्सर मुझे अंधा बना देती है।

ट्यूशन पढ़ाने के बाद घर लौटता, तो विमल की प्रतीक्षा करते-करते नौ बज जाते थे। मालिक को बँधी रकम सौंपकर साढ़े नौ बजे खिन्न चेहरा लिए विमल घर आता। शौचादि से निवृत्त हो दस बजे के लगभग भोजन करने बैठता ! मेरी आदत जल्दी भोजन करने की थी। विमल के आते-आते मेरे पेट में चूहे कूदने लगते थे। माँ बराबर कहती कि मैं अपना खाना पहले क्यों नहीं खा लेता ? वह जब लौटेगा, मैं उसे परस दूँगी। माँ की बातें सच होते भी बेअसर थीं। परिणामतः मैं तो रहता ही था भूखा, माँ भी रोज हम दोनों को परसने के बाद अपनी थाली लगाती थीं। स्वयं जब मैं उनका कहना मानने को तैयार नहीं था, तो उन्हें कैसे आग्रह करता शीघ्र भोजन करने के लिए। पशोपेश में पड़ र मेरी नाव। किसी तरह, दो जून रूखा-सूखा भोजन मिलन… कैसे तो मैं रात को दसवीं की तैयारी करता, और विमल थोड़ा कोचें करता रहता ! भोजनोपरान्त नित्य लैम्प जल पढ़ने बैठ जाता था मैं ! वस्तुस्थिति यह थी पढ़ाई-लि…

हो पाती थी। विमल के पास किताबें बहुत कम थी। मैं ही उसे अपने पास बैठाकर समझा दिया करता था। आदत चुपचाप पढ़ने की थी। फलतः विमल को साथ पढ़ाने से मेरा नुकसान ही होता था। पहले जैसा पूर्ण विश्वास भी नहीं रह गया था कि अच्छी पोजीशन सहित पास हो ही जाऊँगा। अक्सर सोचता कि विमल से अलग स्टडी करने का अनुरोध करूँ। फिर, सोचता कि विमल कहीं कुछ फील न कर जाय। उठते-बैठते यह बात बरबस कचोटती रहती कि हर हालत में मुझे प्रथम आकर छात्रवृत्ति पाना है।

मुझे 'युगान्तर' कार्यालय से एक दिन पत्र मिला। संपादक की ओर से निवेदन किया गया था कि मैं अपनी प्रेषित कहानी के सम्बन्ध में उनसे कुछ परामर्श लूं। अभी तक मैंने किसी संपादक से साक्षात्कार नहीं किया था। पत्र पाकर एक ओर जहाँ मैं खुश हुआ, वहीं असमंजस में भी पड़ गया कि वे कहानी कला के सम्बन्ध में मुझसे कुछ पूछने लगेंगे, तो मैं क्या जवाब दूँगा। कहानियाँ लिख लेता था। यथार्थतः कहानी का शिल्प-विधान या वस्तु-तत्व क्या होता है, नहीं जानता था। दो-चार सुप्रसिद्ध कहानीकारों को छोड़कर किसी का नाम तक नहीं जानता था। अजीब गरीब चक्कर था मेरे सामने। संपादक जी से मिलना इसलिये आवश्यक समझता था कि शायद लाभ हो हो मुझे कुछ। जाते, इस कारण संकोच हो रहा था कि मैं बातचीत कैसे करूँगा उनसे।

भारी मन से मैं 'युगान्तर' प्रेस पहुँच गया। काफी देर तक निरुद्देश्य बरसाती के नीचे खड़ा रहा। आते-जाते यदि किसी से आँखें चार हो जातीं, तो सारे शरीर में एक रोमांच-सा होने लगता था। किससे पूछूं संपादक के बैठने का स्थान। मैं सोच ही रहा था कि सामने एक चपरासी आता हुआ दिखाई पड़ा। मैं तेज कदम रख कर उसके नजदीक पहुँच गया।

—माथुर जी कहाँ बैठते हैं?

—ऊपर!···अभी हैं नहीं। कहीं गए हैं।

—कब तक आयेंगे।

—कह नहीं सकता। शायद दस-पाँच मिनट में आ जायें।···

बारह का भोंपू अभी-अभी बजा था। काफी देर बाद मैं समझ पाया कि पत्रकारों एवं संपादकों की ड्यूटी अन्य आफिसों से भिन्न होती

है। तभी तो माथुर साहब रोज बारह-एक बजे तक आते हैं। अपनी पूर्व अज्ञानता पर मुझे पश्चात्ताप रहा। अनुचित लगा कि संपादक जी के आते ही मैं जा धमकूँ। वे भी क्या सोचेंगे? अभी ठीक से दम मारा नहीं कि भूत पीछे लग गये। इच्छा हुई कि इस समय लौट चलूँ। फिर मिल लूँगा। सोचता-विचारता प्रेस की चहारदीवारी के बाहर आ गया, तो एकाएक मुझे स्मरण हुआ कि अपनी इच्छा से तो मिलने जा नहीं रहा हूँ। उन्होंने ही तो मुझे बुलाया है। पुनः प्रेस की तरफ मैं मुखातिब हो गया। स्थान मालूम हो ही चुका था। मैं चप्पलें फटकारता निश्चित स्थान तक चला गया।

अगल-बगल अनेक संपादक कर्मचारी बैठे थे। यह पूछते संकोच लगा कि माथुर साहब कहाँ कौन हैं? आप-से-आप मैंने ठिगनेकद के श्यामवर्ण चश्माधारी सज्जन को हाथ जोड़ दिये। उड़ती नजर से पहले भी उन्होंने मुझे देख लिया था। फिर भी बिना उनके समुचित अभिवादन प्रतीक्षा के मैं उनकी मेज के समीप खड़ा हो गया। मेरी उपस्थिति का ज्ञान होते हुए भी उन्होंने मुझे बैठने के लिए नहीं कहा। आगमन का तात्पर्य तक नहीं पूछा। कार्यालय से जो पत्र मुझे मिला था, उसे जेब से निकाल उनकी तरफ बढ़ा दिया। माथुर साहब वही थे। पत्र लेते ही वह मुझे विस्मयपूर्वक देखने लगे। कुर्सी पर विराजने के लिए भी तब हीं कहा।

जिसका संदेह था, उन्होंने वही पूछा।

—कितनी कहानियाँ लिखी हैं तुमने?

उत्तर मेरी समझ में नहीं आ रहा था। संक्षेप में इतना भर कहा कि अभी शुरू ही किया है। कदाचित् इस सम्बन्ध में वे और कुछ भी पूछना चाहते थे।...

—पढ़ते किस ईयर में हैं आप?

-- ईयर से उनका आशय यूनिवर्सिटी शिक्षा से था।

कौन कहे। मैंने स्कूली शिक्षा भी पूरी नहीं की थी। झूठ बोलना अनुचित समझता था। अतएव सब कुछ सही-सही बता दिया उन्हें।

मैं मैट्रिक हूँ—जानकर, उनकी मुखाकृति अचानक बदल गयी। कहीं बचकानी बातें न करने लगें वे! मैं बीच में ही वास्तविक प्रसंग पर आ गया।

—आपने कहानी के सम्बन्ध में मुझे बुलाया था?

—हाँ!

इतना कहते ही उन्होंने दराज खींच ली! मुझे अचानक सिहरन-सी महसूस हुई! पहले यदि उन्होंने मेरी प्रेषित कहानी रख लेनी चाही होगी, तो अब वे अवश्यमेव वापिस कर देंगे।

उन्होंने मेरी कहानी मेज पर रख दी। लाल-नीली पेन्सिलों के अनेक चिह्न उसमें खिंचे थे। हाशिये के पास, कहीं-कहीं खड़ी लाइन भी लगा दी गयी थी। सैकड़ों आशंकाओं से दबा मरीज की भाँति मैं अपनी कहानी की तरफ देख रहा था।

—बोले—

—बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं आपकी दूसरी कहानी 'युगान्तर' में प्रकाशित नहीं कर सका। कहानी का थीम जोरदार नहीं है। प्रारम्भ जैसा प्रवाह अंत तक नहीं है।···मालती गरीबी में पली। नये अनुभव अर्जित कर उसने समाज से लोहा लेने के लिए फौलादी कदम उठाया। और अंत में आत्महत्या कर ली! उद्देश्य क्या रहा आपका। कहानी लिखने से पूर्व शायद इधर ध्यान नहीं दिया आपने। मैं तो कहूँगा कि अभी आप कच्चे हैं। पढ़ना चाहिए! प्रतिभा है आपमें लिखने की?

संपादक जी की बातें मुझे अच्छी-बुरी दोनों लगीं। आज्ञा लेकर बाहर आया। कहानी पहले ही मैंने जेब में रख ली थी।

आते वक्त, पान की पीक निगलते हुए उन्होंने इतना और कहा था—

—कभी कोई दूसरी कहानी भेजिएगा। ध्यान रहे, पत्र के स्तर की ही हो।

माँ के स्वास्थ्य की मैं जितनी चिन्ता करता, वे उतना ही जीर्ण होती जा रही थी। असमय आदमी पर, मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है, तो उसकी जीवन सम्बन्धी सभी ख्वाहिशें धूल में मिल जाती हैं। बाबू जी को मरे एक साल के लगभग हो चला था। माँ के दिल में उनकी याद अभी तक ताजी थी। रात रामायण अवश्य पढ़ती। मन्दे रामायण बाँचते वक्त उनकी आँखें चौंधियाने लगतीं। अक्सर इच्छा होती कि माँ से रामायण न पढ़ने के लिए कहूँ। धार्मिक मामलों में कुछ कहना अशोभन समझता था। फलतः साफ-साफ कहने की हिम्मत नहीं हुई। डॉ० शास्त्र ने विशेष रूप से इस बात की मनाही कर दी थी कि माँ को आँखों पर अधिक जोर नहीं डालना चाहिए। गेहूँ चुनने से रोटी बनाने तक सभी काम उन्हें ही तो करने पड़ते थे। कभी-कभी, जब मूड में होतीं, तो मुझसे कहने लगतीं कि अब तुझे शादी कर लेनी चाहिए। मेरा क्या भरोसा! आज हूँ, कल का कोई निश्चय नहीं है।'''

एकांगी-सा हो जाता था ऐसे वक्त मैं! यही सोचता कि कैसे माँ का मुँह बन्द कर दूँ। गरीब परिवार में जहाँ एक ओर लोग भूख, बेकारी और अन्य असुविधाओं के अभाव में तड़पते-रोते हैं, वहीं उन्हें इसकी चिन्ता भी आ घेरती है कि कैसे उनके बेकार निर्धन लड़के-लड़कियाँ काम-धंधे में लग जायँ। घर की स्थिति से माँ पूर्णतया वाकिफ थीं। मेरे विवाह की चिन्ता फिर भी उन्हें बुरी तरह घेरे थी। और कोई अवसर होता, तो शायद मैं माँ से रुष्ट हो जाता। जब मेरे अतिरिक्त और कोई था ही नहीं दायित्व सम्भालने वाला, तो किसके बश पड़ता-गुनता। पिता की अनुपस्थिति में प्रायः मैं माँ को नाराज कर दिया करता था। जिस काम को करने से वे मुझे मना करतीं, उसकी पुनरावृत्ति गाम-ख्वाह कर बैठता था मैं। उस समय यह अन्तर में नहीं आता था कि कहीं माँ का दिल न दुखे या

तरह की तकलीफ न हो। परिस्थिति कितना बना-बिगाड़ देती है। आज मैं जितना ऊँच-नीच सोचने लगा हूँ, मेरा विश्वास है कि इस अवस्था के अन्य लड़के नहीं झेल सकते। दुःख-दैन्य कच्ची उम्र में ही आदमी को परिपक्व बना देते हैं। अनेक बातें, जिन्हें मनुष्य दूसरों द्वारा सीखकर भी नहीं जान पाता, वे बातें मुझे सहज ही विदित हो गयी थीं।

जाड़े की रात थी। किसी ने बाहर से दरवाजा खटखटाया, तो मैं चौंक बैठा। कुंडी खोली, तो देखा कि मुकुन्द मामा कुली से असबाब नीचे रखवा रहे हैं। मैंने सादर हाथ जोड़ दिये। फर्ज अदायगी के लिए उन्होंने भी 'खुश रहो' कह दिया।

बाबूजी की मृत्यु के बाद बरेली से पहली बार वे यहाँ आये थे। माँ को नींद कम आती थी। जाग वे तभी गयी थीं, जब मैं किवाड़ खोलने के लिए सीढ़ियाँ उतर रहा था। ठीक-ठीक माँ को भी नहीं मालूम था कि मुकुन्द मामा आये होंगे! अन्दर घुसकर जब वे माँ को पुकारने लगे, तो माँ भी जल्दी से नीचे आ गयीं। गाड़ी लेट थी, वरना मामा जी दो घंटे पूर्व ही आ गए होते।

काफी दिन बाद यदि माँ अपने किसी सम्बन्धी से मिलतीं, तो उनकी आँखों से आँसू बहने लगते थे। मामा जी भी पुरानी लीक के अनुयायी थे। माँ को समझाना तो दर-किनार, मामा जी असंग बीती बातें खोद-खोद कर पूछ रहे थे। उनकी फूहड़ बातों पर मुझे क्रोध इसलिए आ रहा था कि जिस व्यक्ति को २५ साल सरकारी दफ्तर में कलम घिसते बीत चुके हों, वह इतना नासमझ और अव्यावहारिक क्यों रह गया! ऐसे व्यक्ति कदाचित् दफ्तर में समय बिताने और वेतन पाने के लिए ही आते हैं। रात, आधी से अधिक बीत चुकी थी। मेरी आँखें कड़वड़ा रही थीं। मैं इस फेर में था कि किसी तरह बात-चीत का ताँता समाप्त हो और मैं बिस्तर पर लम्बा हो जाऊँ! नींद की खुमारी बराबर मुझे अनुप्रेरित कर रही थी कि मैं कैसे सोऊँ? सामाजिक बन्धन फिर भी मुझे वहाँ से हटने की अनुमति दे रहे थे।

सुबह मुकुन्द मामा से विदित हुआ कि उनकी बदली पुनः इलाहाबाद हो गयी है। माँ को चाहे प्रसन्नता हुई हो, किन्तु मुझे तो जैसे काठ मार गया। मुकुन्द मामा में मुझे कोई अपनत्व नहीं दिखाई पड़ता था। उन्होंने कुछ दिन तक मदद जरूर की थी हम लोगों की। मन कभी स्वीकार नहीं करता था यह, कि उन्होंने, मामा के नाते सब कुछ किया था। बाहर से कोमल बनकर जिस तरह स्वार्थमना व्यक्ति अन्दर-ही-अन्दर गाली देता है, कदाचित् उन्हीं लोगों में से मामा भी थे। पैसा दाँत से पकड़ते थे वे। एक बार जो दो कुरता पैजामा बनवा लेते, तो तीन साल से कम नहीं पहनते थे। माँ बताती हैं कि जब से पत्नी का देहान्त हो गया, मामा जी ने दोनों वक्त भोजन करना बंद कर दिया है। कुछ हो जाय! शाम से पहले एक ग्रास नहीं निगलते। बीसों हजार रुपये फिक्स्ड डिपाजिट एवं सेविंग्स बैंक खाते में जमा है। कोशिश यही रहती है उनकी कि किसी को भी इसका सूराक न मिले। माँ को छोड़कर और कोई निकटतर आत्मीय भी नहीं था। ऐब-व्यसन भी नहीं था। रोटी-दाल के अलावा कोई खर्च नहीं था। सूम पैदा हुए थे और सूम ही मर जाना चाहते थे। भगवान् ने शक्ल-सूरत भी अजीब दी थी! माँ के स्वभाव से जब मैं मामा जी की तुलना करता, तो कोई साम्य नजर नहीं आता था। एक दिन माँ से मैंने पूछा भी कि जब तुम उनकी बहिन लगती हो, तो क्यों नहीं साथ रहती? इस बात पर माँ इतनी हँसी की क्या कहूँ?

मामा उनमें से थे, जो बासी रोटी दरवाजे पर खड़े भिखारी को न देकर कूड़े में फेंक देना श्रेयस्कर समझते थे। मुकुन्द मामा की जगह आज यदि कोई दूसरा आदमी होता, तो भला अपनी विधवा बहिन को निराश्रित छोड़ देता! माँ अस्पताल में पड़ी रही। हफ्तों घर में चूल्हा नहीं जला। मैंने जीविकोपार्जन के लिए रिक्शा चलाया! मामा को इन सबसे शायद कोई सरोकार नहीं था। उन्हें तो दोनों समय रायता

तरह की तकलीफ न हो। परिस्थिति कितना बना-बिगाड़ देती है। आज मैं जितना ऊँच-नीच सोचने लगा हूँ, मेरा विश्वास है कि इस अवस्था के अन्य लड़के नहीं झेल सकते। दुःख-दैन्य कच्ची उम्र में ही आदमी को परिपक्व बना देते हैं। अनेक बातें, जिन्हें मनुष्य दूसरों द्वारा सीखकर भी नहीं जान पाता, वे बातें मुझे सहज ही विदित हो गयी थीं।

जाड़े की रात थी। किसी ने बाहर से दरवाजा खटखटाया, तो मैं चौंक बैठा। कुंडी खोली, तो देखा कि मुकुन्द मामा कुली से असबाब नीचे रखवा रहे हैं। मैंने सादर हाथ जोड़ दिये। फर्ज अदायगी के लिए उन्होंने भी 'खुश रहो' कह दिया।

बाबूजी की मृत्यु के बाद बरेली से पहली बार वे यहाँ आये थे। माँ को नींद कम आती थी। जाग वे तभी गयी थीं, जब मैं किवाड़ खोलने के लिए सीढ़ियाँ उतर रहा था। ठीक-ठीक माँ को भी नहीं मालूम था कि मुकुन्द मामा आये होंगे! अन्दर घुसकर जब वे माँ को पुकारने लगे, तो माँ भी जल्दी से नीचे आ गयीं। गाड़ी लेट थी, वरना मामा जी दो घंटे पूर्व ही आ गए होते।

काफी दिन बाद यदि माँ अपने किसी सम्बन्धी से मिलतीं, तो उनकी आँखों से आँसू बहने लगते थे। मामा जी भी पुरानी लीक के अनुयायी थे। माँ को समझाना तो दर-किनार, मामा जी असंग बीती बातें खोद-खोद कर पूछ रहे थे। उनकी फूहड़ बातों पर मुझे क्रोध इसलिए आ रहा था कि जिस व्यक्ति को २५ साल सरकारी दफ्तर में कलम घिसते बीत चुके हों, वह इतना नासमझ और अव्यावहारिक क्यों रह गया! ऐसे व्यक्ति कदाचित् दफ्तर में समय बिताने और वेतन पाने के लिए ही आते हैं। रात, आधी से अधिक बीत चुकी थी। मेरी आँखें कड़बड़ा रही थीं। मैं इस फेर में था कि किसी तरह बात-चीत का ताँता समाप्त हो और मैं बिस्तर पर लम्बा हो जाऊँ! नींद की खुमारी बराबर मुझे अनुप्रेरित कर रही थी कि मैं कैसे सोऊँ? सामाजिक बन्धन फिर भी मुझे वहाँ से हटने की अनुमति दे रहे थे।

सुबह मुकुन्द मामा से विदित हुआ कि उनकी बदली पुनः इलाहाबाद हो गयी है। माँ को चाहे प्रसन्नता हुई हो, किन्तु मुझे तो जैसे काठ मार गया! मुकुन्द मामा में मुझे कोई अपनत्व नहीं दिखाई पड़ता था। उन्होंने कुछ दिन तक मदद जरूर की थी हम लोगों की। मन कभी स्वीकार नहीं करता था यह, कि उन्होंने, मामा के नाते सब कुछ किया था। बाहर से कोमल बनकर जिस तरह स्वार्थमना व्यक्ति अन्दर-ही-अन्दर गाली देता है, कदाचित् उन्हीं लोगों में से मामा भी थे। पैसा दाँत से पकड़ते थे वे। एक बार जो दो कुरता पैजामा बनवा लेते, तो तीन साल से कम नहीं पहनते थे। माँ बताती हैं कि जब से पत्नी का देहान्त हो गया, मामा जी ने दोनों वक्त भोजन करना बंद कर दिया है। कुछ हो जाय! शाम से पहले एक ग्रास नहीं निगलते! बीसों हजार रुपये फिक्सड डिपाजिट एवं सेविंग्स बैंक खाते में जमा है। कोशिश यही रहती है उनकी कि किसी को भी इसका सुराक न मिले। माँ को छोड़कर और कोई निकटतर आत्मीय भी नहीं था। ऐब-व्यसन भी नहीं था। रोटी-दाल के अलावा कोई खर्च नहीं था। सूम पैदा हुए थे और सूम ही मर जाना चाहते थे। भगवान् ने शक्ल-सूरत भी अजीब दी थी! माँ के स्वभाव से जब मैं मामा जी की तुलना करता, तो कोई साम्य नजर नहीं आता था। एक दिन माँ से मैंने पूछा भी कि जब तुम उनकी बहिन लगती हो, तो क्यों नहीं साथ रहती? इस बात पर माँ इतनी हँसी की क्या कहूँ?

मामा उनमें से थे, जो बासी रोटी दरवाजे पर खड़े भिखारी को न देकर कूड़े में फेंक देना श्रेयस्कर समझते थे। मुकुन्द मामा की जगह आज यदि कोई दूसरा आदमी होता, तो भला अपनी विधवा बहिन को निराश्रित छोड़ देता! माँ अस्पताल में पड़ी रहीं। हफ्तों घर में चूल्हा नहीं जला। मैंने जीविकोपार्जन के लिए रिक्शा चलाया! मामा को इन सबमें शायद कोई सरोकार नहीं था। उन्हें तो दोनों समय रायता

चटनी तरकारी के साथ भरपेट चपातियाँ चाहिए थीं। वे जो कहते, मैं कड़ुवे घूंट की तरह कंठ के नीचे उतार जाता! इतना दकियानूस आदमी बीसवीं सदी में भी रह सकता है।…

रिक्शा छोड़कर विमल कोई दूसरा काम नहीं ढूंढ़ सका था। साथ रहने से पूर्व मैंने सोचा था कि उसके लिए भी मैं ट्यूशन आदि की व्यवस्था कर दूँगा। स्वयं जब दो से अधिक ट्यूशन न खोज पाया था, तो विमल के प्रति चिन्तित एवं उद्विग्न रहना स्वाभाविक था। दिखाने के लिए मैं उससे कह जरूर देता था कि रिक्शा चलाना बन्द कर दो। क्रियात्मक रूप से कुछ भी कर सकने में असमर्थ था। जिस समय घर पर मैं पढ़ता होता, विमल सड़कों की धूप-गर्द सहता रहता था। रात, थोड़ा-बहुत हठात् जो मैं पढ़ा देता, उसी पर संतोष कर वह घोड़े बेचकर सो रहता था। उसका प्रसन्न मुँह और स्वच्छन्द आचरण मुझे प्रेरक जरूर लगता। किन्तु उसी वक्त ऐसा भी महसूस होता कि विमल स्वर्ण अवसर हाथ से निकला जाने दे रहा है। उसकी अध्ययन अल्पता से मुझे भय था कि कहीं वह फेल न हो जाय! स्वयं भी इसका पूर्ण विश्वास नहीं था, कि मैं भी, प्रथम श्रेणी में मेरिटलिस्ट के अन्तर्गत उत्तीर्ण हो जाऊँगा।

कालेज खुल जाने से प्रिंसिपल साहब घर-बाहर काफी व्यस्त रहने लगे थे। कोई-न-कोई काम हर वक्त लगता था। शाम, श्याम को पढ़ाने जाता, तो उससे पढ़ाई के अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं हो पाती थी। उसकी शरारतें कम होती जा रहीं थीं। जो काम करने को कह जाता, दूसरे दिन गलत सही दिखा अवश्य देता था। सारा दोष उसे इसलिये नहीं दिया जा सकता कि उसका मस्तिष्क काफी अपरिपक्व एवं अविकसित था। गणित वह किसी तरह नहीं समझ पाता था। मैं जो सवाल कायदे सहित बार-बार उसे समझाता, उसे वह दूसरे दिन पुनः भूल जाता था। मुझे क्रोध आता। पर लाभ क्या था उससे।

परीक्षा सर पर थी। ट्यूशन के बाद घर ही आता था। स्कूल

जाता। ध्यान परीक्षा की ही तरफ खिंचा रहता था। अक्सर अनावश्यक समझ कर पीरियड कट कर देता था। मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया था कि केवल स्कूल की पढाई से कोई अच्छे अंक नहीं प्राप्त कर सकता। नोट्स लेने की आदत नहीं थी। विमल का ख्याल कर नोट्स भी बनाता चल रहा था। आशा थी कि अगर विमल परीक्षा के समय केवल नोट्स याद कर लेगा, तो पास-मार्क्स अवश्य मिल जायेंगे। अन्य कोई सरल उपाय भी नहीं था। जितना वक्त नोट्स तैयार करने में व्यय करता था, उतना, यदि निजी पढ़ाई में लगाता तो मेरा फायदा हो सकता था।

अच्छाइयों के साथ बुराइयाँ भी होती हैं। प्राय: अनुभव करता कि कोई, भीतर मुझसे यह कह रहा है कि व्यर्थ ही मैंने विमल को अपने यहाँ शरण दी। सेनमेन एक मुसीबत मोल ले ली है। सेठ साहूकार तो नहीं कि दूसरों की तकलीफ वेदना से आक्रान्त हो, आश्रय देते रहो। कुछ करना चाहते हो, तो पहले अपने गम गलत करो! हाथ में ताकत जुटाओ। फिर किसी ओर को सहारा दो। तथापि मेरा, यह दृढ़ संकल्प था कि एक बार जिसका हाथ पकड़ लिया, उसे अकारण नहीं छोड़ूंगा। वह खुद त्याग दे, तब भी नहीं। उस जैसा दोस्त कहाँ मिल सकता है इस स्वार्थान्ध, मक्कार और खुदगर्ज दुनिया में।

अलमारी झाड़-पोछ रहा था। अचानक मुझे एक कहानी की पुस्तक मिली, जिसे मैंने दिनेश से पढ़ने के लिए ली थी। स्व० दिनेश ने भी क्या समझा होगा कि मैंने उससे पढ़ने के लिए पुस्तक मांगी और उसके जीते-जी लौटायी तक नहीं। अकस्मात् मेरा कंठ अवरुद्ध-सा हो गया। मैंने निश्चय कर लिया कि मने आज दिनेश हम लोगों के बीच नहीं है, किन्तु उसकी पुस्तक मैं लौटाऊँगा अवश्य। मन में यह चोर तो न रहेगा कि मैंने दिनेश को पुस्तक वापस नहीं की। उसकी स्मृति से ऋणग्रस्त तो नहीं हो जाऊँगा? हाथ में पुस्तक थी, लेकिन प्रतिछवि मुझे उसी की दिखाई पड़ रही थी। सुषमा की कितनी ही बातें मुझे दिनेश की बदौलत मालूम होती थीं। सुषमा के प्रति [illegible]

रहा था, उसका कारण दिनेश ही था। भाई का अपराध स्वयं ओढ़ लेना, पिता की तीखी-कड़वी फटकारें निर्विरोध सुन लेना, आदि सुषमा के आन्तरिक प्यार की द्योतक थीं। साक्षात् कर जितना मैं सुषमा को नहीं समझ सका, उससे अधिक दिनेश के माध्यम से! दिनेश के अन्दर जो दोष-अवगुण थे, उसके लिये केवल उसी को बुरा-भला नहीं कहा जा सकता। जिस घर में उसका लालन-पालन हुआ था, वहाँ बुरी आदतों का जाल हमेशा फैला करता है। स्कूल में पार्टीबाजी, किसी लड़के को मार-पीट देना और थोड़ी-सी बात पर बिगड़ जाना—दिनेश में ही नहीं, सैकड़ों समान कुलोत्पन्न परिवारों में देखी जा सकती हैं। ऐसे बालक बचपन से ही क्रूर एवं आक्रोशी होते हैं। उनके हृदयों में गरीबों के लिए जरा हमदर्दी नहीं होती।

आज से पूर्व दिनेश इस रूप में मुझे याद नहीं आया था। उसकी स्मृति तो आ ही रही थी। सुषमा के प्रति भी मेरा आकर्षण द्विगुणित हो रहा था। कुछ समय एक ईर्ष्या की भावना जो घर कर गयी थी, उसमें सहसा कमी आ गयी थी। पता नहीं कैसे यह भावना मेरे मस्तिष्क में उभर आयी थी कि सुषमा मेरे संग इंट्रेंस की परीक्षा दे रही है। सुषमा जब-जब सामने आयी है, सदा एक नयी प्रेरणा का संस्पर्श मिलता रहा है। संयोगात् आज दोनों प्रतियोगी हैं। देखना है कि किसे विजयश्री मिलती है?

रोज सोचता, कि आज जरूर दिनेश की किताब सुषमा को दे आऊँगा। किन्तु अभी तक टाल-मटूल में ही फँसा रहा। कुछ यह भी कि उधर मेरे पैर मुड़ ही नहीं पाते थे। जैसे मैंने चोरी-बदमाशी की हो और भेद खुल जाने के डर से हिचक रहा होऊँ।

अजीबो-गरीब हालत थी मेरी।

परीक्षा हर विद्यार्थी के लिए भयावह होती है। जिस दिन, जिस विषय का इम्तहान होता, मैं उस दिन उसे छोड़कर और कुछ नहीं छूता था। पर्चा-समाप्ति पर पुनः उक्त पुस्तकें देखना मुझे भारस्वरूप प्रतीत होता था। परीक्षोपरान्त जितना संतुष्ट एवं प्रसन्न मैं लौटता, विमल उतना ही रूखा उखड़ा नजर आता था। यह मैंने कभी नहीं पूछा कि उसका पर्चा कैसा हुआ है? सच पूछो, तो इसमें मुझे सख्त नफरत थी। छात्र अधिकांशतया इस श्रेणी के थे! मुझसे कभी कोई पेपर के सम्बन्ध में पूछ बैठता, तो मैं जान-बूझकर अपना मुंह फेर लेता था।

विमल के पर्चे अपेक्षाकृत कम अच्छे ही हुए होंगे, ऐसा मेरा अनुमान था। जैसे प्रश्न-पत्र इस साल आये थे, वे निर्धारित पाठ्यक्रम के बाहर थे। विमल रटे प्रश्नों का जवाब जितना सटीक दे सकता था, उतना जनरल प्रश्नों का नहीं। मेरी प्रकृति विमल के विरुद्ध थी। मैं प्रायः वही प्रश्न हल करना पसन्द करता, जो साधारण ज्ञान पर आधारित होता था। इसका ज्ञान मुझे स्कूल में ही हो गया था कि परीक्षक उस विद्यार्थी की कॉपी देखकर अधिक प्रभावित होता है, जो कठिन एवं सामान्य ज्ञान के प्रश्नों को अपनी सूझ-बूझ से हल करते हैं। एक बार इतिहास के पांच प्रश्न करने के बाद मैं ऐसी ही मुसीबत में फंस गया था। लाख प्रयत्न करने पर भी ऐसा कोई प्रश्न नजर नहीं आया, जिसे कोर्स की पुस्तक पढ़कर मैंने तैयार किया हो। सामान्य ज्ञान पर आधारित प्रश्न कदाचित् इसलिए नहीं करना चाहता था कि कहीं लेने के देने न पड़ जायें। उलझन में था। समय भी कम था। अच्छी तरह सर्वांग हल नहीं किया जा सकता था। फलतः ऐसा प्रश्न

जिसका केवल एक-आध प्वाइंट ही मुझे मालूम था। केवल उसी का सहारा लेकर मैंने लगभग तीन पृष्ठ लिख डाले। आशा रत्ती भर नहीं थी कि उसमें मुझे कुछ अंक भी मिलेगा। आश्चर्य तब हुआ मुझे, जब कापी मिलने पर देखा कि उस प्रश्न में सर्वाधिक अंक मिले हैं। तभी से मैंने निश्चय कर लिया था कि भविष्य में वरीयता मैं वैसे प्रश्नों को ही दिया करूँगा।

जिस दिन निवृत्त हो गया परीक्षा से, उस दिन महान् संतोष का अनुभव हुआ। मां पूछने लगीं कि आगे अब क्या विचार है ? मैं क्या बताता। निरुत्तर हो रहा। वे जब जो कहतीं, उसका प्रतिकार मैं नहीं कर पाता था। मां की किसी बात का विरोध करना मैं उनके अपमान के समान समझता था। उनके गिरते स्वास्थ्य से मैं यों ही चिन्तित रहता था। किसी तरह चोट पहुँचाकर मैं और परेशान नहीं करना चाहता था। सदैव ध्यान रखता कि मां को कभी किसी बात का बुरा न लगे। चौबीस घंटे मन पढ़ाई की तरफ रमा रहता था। एम० ए० मेरी स्वर्णिम कल्पना थी। निश्चय बताते इसलिए संकोच लगता था कि लोग व्यर्थ मेरा मखौल न उड़ायें ! भले, कोई-कोई बात मां के मुंह से असंगत निकल पड़ती ! मैं नत-सिर हो सब सह-सुन लेता था।

अरसे से सुषमा का कोई समाचार नहीं मिला था। उसकी याद आते ही मुझे दिनेश की पुस्तक का ख्याल आ जाता था। कहां मैं उक्त पुस्तक सुषमा को लौटाने जा रहा था। ऐसा टाला कि टालता ही रहा ! आत्म-ग्लानि से मस्तक झुक गया।

आठ बजे थे। सुषमा घर पर होगी, यह सोचकर उसके घर का रास्ता नापने लगा। जब घर के सामने रहती थी सुषमा, तब जरा संकोच नहीं मालूम पड़ता था। पता नहीं क्यों ? अब उसके घर जाते शर्म आती थी !

सीढ़ियां चढ़कर अन्दर जाने लगा, तो बैंक का वर्दीधारी चपरासी

मिल गया। उससे पहले भी एक बार मुठभेड़ हो चुकी थी। देखते ही टोकने लगा कि मैं किसे चाहता हूँ।

साहेब तो सून नहीं !

—मामी से मिलना है।

मेरे प्रत्युत्तर से यद्यपि सन्तुष्ट नहीं हुआ था वह। फिर भी, कुछ सोचकर चुप हो गया !

चपरासी के अनुपयुक्त तर्क से क्रोध बेहद आया। इच्छा हुई कि पुस्तक पकड़ा कर चलता बनूँ ! कम-से-कम मामी सुषमा को भी तो पता चल जाय, कि मेहमानों को किस प्रकार अपमानित करते हैं यहाँ के चपरासी !

कुछ निश्चय भी नहीं कर पाया था कि देखा कि मामी मुझे बुला रही हैं। सिसकने को मन नहीं हो रहा था। सस्कार ऐसे थे कि बहुत शीघ्र ढीला पड़ गया। कंठ तक आयी बात को मुँह से बाहर निकालने का मुझमें साहस नहीं रह गया था। संकेत मात्र से पास चला गया। आगे बढ़ ही रहा था कि चपरासी से पुनः मेरी मुठभेड़ हो गयी। मामी के सम्मुख अपनो जैसा देखकर, उसकी घिग्घी बंध गयी !

—मैं इन्हीं का सन्देशा देने आया था बहूजी !

मामी समझ नहीं सकी थी।

—कैसा सन्देशा रे ननकू !

उसकी पूरी बात सुन मामी को हँसी आ गयी।

—तू इसे भी नहीं पहचानता। पुराने मकान के सामने ही तो इसका भी मकान था। तू कहाँ था तब ?...

अनन्तर, साथ लेकर कमरे में चली गयी।

सुषमा मशीन चला रही थी। काम में इतना मशगूल थी कि उसे मेरे आगमन का आभास तक नहीं हुआ।...

—इस साल तो तूने भी मैट्रिक का इम्तहान दिया होगा।

—जी हाँ !

शायद, मेरे गूंजते स्वर सुषमा ने सुन लिये थे ! अचानक मशीन की खटर-पटर बंद हो गयी।

—अच्छा, तो आप आये हैं। कहिए पेपर कैसे हुए ?

पुनः वही पूछा गया, जिससे मुझे सख्त नफरत थी। बिना नाक-भौं सिकोड़े मैंने यथोचित उत्तर दे दिया।

—फर्स्ट तो आना ही चाहिए आपको !

—आ सकता है ?

सुषमा इस प्रसंग में और कुछ भी पूछना चाहती थी। मेरी अनरसता से उसे भी चुप हो जाना पड़ा।

—मैट्रिक के बाद क्या इरादा है ?···भाभी ने पूछा।

—अभी तो पढ़ाई चालू रखने का विचार है।

मेरे उत्तर से भाभी को काफी आश्चर्य हुआ ! सुषमा भी गंभीर हो चली थी।

चोर की तरह मैं पुस्तक हाथ में लिये था। समझ नहीं पा रहा था कि पुस्तक दूँ, तो कैसे ? ऐसा न हो कि दिनेश की चर्चा छिड़ने से सुषमा और भाभी रुआँसी हो जायँ। विचित्र स्थिति थी मेरी। किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा था। अब लाभ-अलाभ की बातें सूझने लगीं मुझे। वातावरण ऐसा बन गया था कि मैं कुछ भी नहीं कह सकता था।

हर घर में जहाँ असामयिक मृत्यु हो जाती है, सब यही चाहते हैं कि मरने वाले का नाम जुबान पर न लाया जाय। जीते-जी क्या नहीं करता आदमी ! घर का एक सदस्य जिस दिन वापिस आने में देर कर देता है, तो सारा घर चिन्ता सागर में डूब जाता है। दुर्भाग्यवश वही, यदि, दिवंगत हो जाता है, तो उसके स्मरण मात्र से घबड़ाते हैं। कदाचित् इसलिए कि रिसते घाव शेफ्टिक का रूप न ले लें।

कोई आध घन्टे तक बातचीत होती रही। भाभी चपरासी को दो

बार पुकार चुकी थीं। कुछ देर बाद वे स्वयं उठकर बाहर चली गयीं।
अवसर अच्छा था। धीरे से पुस्तक मैंने सुषमा को पकड़ा दी।

—कैसी पुस्तक है यह!

—तुम्हारी!···

—मैंने कभी कोई पुस्तक नहीं दी!

—तुमसे नहीं, दिनेश से एक बार पढ़ने के लिए ले गया था।

बिना उलटे-पुलटे पुस्तक, सुषमा ने, तख्त पर रख दी। पुस्तक देखते ही वह अन्तर्मुखी हो गयी। जिसकी आशंका थी, अन्ततोगत्वा वही हुआ। भाभी की हालत का अनुमान तो मैं सहजतः लगा सकता था। अच्छा हुआ, कि वे पहले ही वहाँ से आवश्यक कार्य-वश खिसक गयीं।

निश्चित ही उनके आँसू निकल पड़ते।···सुषमा से कुछ देर बातें करना चाहता था। गंभीर रुख देख चुप हो गया।

भाभी नाश्ता ले आयी थीं।

—लो, कुछ खा लो।

—इसकी क्या जरूरत थी। अभी-अभी नाश्ता करके चला हूँ।

—चल बात मत बना।

और मैं मठरी, आलू की कचरी आदि उदरस्थ कर गया। सुषमा की जगह आज यदि दिनेश होता, तो वह भी मेरा साथ देता। सुषमा से इस सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए सोच भी नहीं सकता था। चाय पीने की आदत तो थी नहीं। पीते वक्त मुझे लगता जैसे मेरा होंठ एवं जीभ झुलस गया हो। बीच-बीच में आँख से आँसू भी निकलने लगते थे। रूमाल मेरे पास था नहीं! कहीं कोई देख न ले, इसका हर क्षण ख्याल रखता था। लुक-छिपकर हथेली से पोंछ भर लेता था।

भाभी पुनः कमरे के बाहर चली गयी थीं। सुषमा के माथे की उभरी रेखाएँ पुनः एकाकार हो गयी थीं। मौका देख, मैंने कहा—

—एडमीशन तो प्राइवेट में लोगी।

शायद, मेरे गूंजते स्वर सुषमा ने सुन लिये थे ! अचानक मशीन की खटर-पटर बंद हो गयी।

—अच्छा, तो आप आये हैं। कहिए पेपर कैसे हुए ?

पुनः वही पूछा गया, जिससे मुझे सख्त नफरत थी। बिना नाक-भौं सिकोड़े मैंने यथोचित उत्तर दे दिया।

—फर्स्ट तो आना ही चाहिए आपको !

—आ सकता है ?

सुषमा इस प्रसंग में और कुछ भी पूछना चाहती थी। मेरी अनरसता से उसे भी चुप हो जाना पड़ा।

—मैट्रिक के बाद क्या इरादा है ?···भाभी ने पूछा।

—अभी तो पढ़ाई चालू रखने का विचार है।

मेरे उत्तर से भाभी को काफी आश्चर्य हुआ ! सुषमा भी गंभीर हो चली थी।

चोर की तरह मैं पुस्तक हाथ में लिये था। समझ नहीं पा रहा था कि पुस्तक दूँ, तो कैसे ? ऐसा न हो कि दिनेश की चर्चा छिड़ने से सुषमा और भाभी रुआँसी हो जायँ। विचित्र स्थिति थी मेरी। किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा था। अब लाभ-अलाभ की बातें सूझने लगीं मुझे। वातावरण ऐसा बन गया था कि मैं कुछ भी नहीं कह सकता था।

हर घर में जहाँ असामयिक मृत्यु हो जाती है, सब यही चाहते हैं कि मरने वाले का नाम जुबान पर न लाया जाय। जीते-जी क्या नहीं करता आदमी ! घर का एक सदस्य जिस दिन वापिस आने में देर कर देता है, तो सारा घर चिन्ता सागर में डूब जाता है। दुर्भाग्यवश वही, यदि, दिवंगत हो जाता है, तो उसके स्मरण मात्र से घबड़ाते हैं। कदाचित् इसलिए कि रिसते घाव शेफ्टिक का रूप न ले लें।

कोई आध घन्टे तक बातचीत होती रही। भाभी चपरासी को द

वार पुकार चुकी थीं। कुछ देर बाद वे स्वयं उठकर बाहर चली गयीं।
अवसर अच्छा था। धीरे से पुस्तक मैंने सुषमा को पकड़ा दी।

—कैसी पुस्तक है यह!

—तुम्हारी!···

—मैंने कभी कोई पुस्तक नहीं दी!

—तुमने नहीं, दिनेश से एक बार पढ़ने के लिए ले गया था।

बिना उलटे-पुलटे पुस्तक, सुषमा ने, तख्त पर रख दी। पुस्तक देखते ही वह अन्तर्मुखी हो गयी। जिसकी आशंका थी, अन्ततोगत्वा वही हुआ। मामी की हालत का अनुमान तो मैं सहजतः लगा सकता था। अच्छा हुआ, कि वे पहले ही वहाँ से आवश्यक कार्य-वश खिसक गयीं।

निश्चित ही उनके आँसू निकल पड़ते।···सुषमा से कुछ देर बातें करना चाहता था। गंभीर रुख देख चुप हो गया।

मामी नाश्ता ले आयी थीं।

—लो, कुछ खा लो।

—इसकी क्या जरूरत थी। अभी-अभी नाश्ता करके चला हूँ।

—चल बात मत बना।

और मैं मठरी, आलू की कचरी आदि उदरस्थ कर गया। सुषमा की जगह आज यदि दिनेश होता, तो वह भी मेरा साथ देता। सुषमा से इस सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए सोच भी नहीं सकता था। चाय पीने की आदत तो थी नहीं। पीते वक्त मुझे लगता जैसे मेरा होंठ एवं जीभ झुलस गया हो। बीच-बीच में आँख से आँसू भी निकलने लगते थे। रूमाल मेरे पास था नहीं! कहीं कोई देख न ले, इसका हर क्षण ख्याल रखता था। लुक-छिपकर हथेली से पोछ भर लेता था।

मामी पुनः कमरे के बाहर चली गयी थीं। सुषमा के माथे की उभरी रेखाएँ पुनः एकाकार हो गयी थीं। मौका देख, मैंने कहा—

—एडमीशन तो ब्रासनेट में लोगी।

—अभी कुछ निश्चय नहीं है। परीक्षाफल भी तो नहीं निकला है अभी। पहले पास तो हो जाऊँ।

—पास क्यों न होगी!

अनन्तर शान्त हो गया।

मैं देख रहा था कि सुषमा पहले जैसी नहीं रह गयी थी। न अल्हड़ता थी न चपलता बढ़ा-चढ़ाकर बातचीत करने की प्रवृत्ति भी नहीं रह गयी थी।

पुनः मेरे मुँह से निकल गया—

—सुषमा!···

उसने आँखें झुका लीं! क्या कहना चाहता था—अकस्मात् भूल गया?

—हूँ?

—कुछ नहीं!···

—यह कैसे मान लूँ! जरूर कुछ कहना था।

—खास बात तो नहीं!···ये, कि आदमी कितना बदलता जा रहा है। किसी एक धुरी पर ठहर नहीं पाता!

—मैं तो कुछ भी नहीं समझी। ऐसे ऊँचे ख्याल, मैं कभी नहीं समझ सकती। सीधी-सादी भाषा में बोलना क्या तुम्हें नहीं आता।

थोड़ी ठेस पहुँची मुझे! तथापि, जाहिर नहीं होने दिया मैंने कि सुषमा का हस्तक्षेप मुझे पसंद नहीं आया!

—रुके क्यों? बोलिए क्या कहना चाहते हैं।

—जब मेरी बातें ग्राह्य ही नहीं, तो क्या कहूँ।

—अच्छा, जैसे कहना चाहते हो—कहो।

—काफी देर हो गयी—कहकर मैं उठना चाहता था, कि—

—छोड़क प्रसंग मुँह में ही निगल गये!

—शायद, समय की अनुपयुक्तता के कारण मुँह में ही रह जाय।···

भाभी आ न जातीं, तो सुषमा कदाचित् बात बिना पूरी कराये मुझे

न जाने देती। मैं अभिवादन कर बाहर चला गया। जाते वक्त सुषमा अपलक मेरी तरफ देखती रही। ओझल होने से पूर्व मैंने भी एक बार आँख भर कर सुषमा को देखा। एक ऐसी खुमारी थी उस वक्त उसकी आँखों में, जो बरबस मुझे अपनी तरफ खींच रही थी। ऐसा कोई बहाना भी नहीं था कि मैं पुनः सुषमा के पास जाकर जग बोती सुनता-सुनाता।

आज कई मास बाद मैं सुषमा से मिलने गया था, किताब का बहाना लेकर। क्या अब, बिना बहाना किये मैं उससे नहीं मिल सकता। कुछ ही दिन में तो ये झिझक-लज्जा खटकने लगी है। इसलिये कि अब बड़े हो गये हैं। मैट्रिक की परीक्षा दे चुके हैं।'''सम्भवतः सही है।''' कितना सक-संभल कर बातें कर रही थी आज सुषमा! कौन ऐसी दीवार है, जो धीरे-धीरे दुराव लाता जा रहा है। मेरी सामाजिक स्थिति भी तो भिन्न है? क्या नहीं मालूम उसे यह? तेजी से दिल धड़कने लगता। पहाड़ से गिरता-पड़ता प्रपात शान्त स्थिर-सा हो जाता।'''मुझ जैसों के लिए सुषमा की कल्पना करना भी शायद असंगत है। लेकिन, क्यों उससे मिलने को बेचैन रहता हूँ? जानबूझ कर गलती करना कहाँ तक उचित है।

अधिक मेहनत न कर सकने पर भी जब मैं फर्स्ट डिवीजन में मैट्रिक पास हो गया, तो माँ की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। जिसमें मैं जैसी आशा थी, वही हुआ। सुषमा भी सेकंड डिवीजन पास हो गयी। परिश्रम के मुकाबले वह उचित श्रेणी से अछूती रही। रिजल्ट निकलने पर जब मैं स्कूल पहुँचा, तो सभी गुरुजनों ने मेरा हँस-हँस कर स्वागत किया। प्रिन्सिपल साहब तो इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने जेब से दस का नोट निकालकर मुझे पकड़ा दिया। अपने ऊपर उनका अगाढ़ स्नेह देखकर मैं प्रतिकार नहीं कर सका। प्राप्तांक देखने से मुझे विश्वास हो गया कि मेरिट में मेरा नाम भी आ जायगा। अध्यापकों से प्रिन्सिपल साहब मेरी प्रशंसा करने लगे, तो मैं कुछ झेप-सा गया। बड़ी मुश्किल से दिर

छुड़ा पाया। सोल्लास मुक्त पंछी की तरह भूमता-इठलाता मैं घर लौट आया।···विमल रिक्शा खींच रहा होगा। उसने अभी तक परीक्षाफल देखा भी या नहीं ?···फेल तो हो गया। किन्तु अगले साल पढ़ेगा कैसे ? रेगुलर छात्र रहकर जब वह पास नहीं हो सका, तो प्राइवेट बैठने में तो उसे और भी असुविधा होगी।

माँ को मेरे पास होने की जितनी खुशी थी, उतना ही विमल के लुढ़कने का गम। आज उनका अंग-प्रत्यंग हर्ष-विह्वल था। आज जिस तहे-दिल से माँ ने मुझे शाबाशी दी थी, उसका स्मरण मुझे प्रतिक्षण पुलकित-रोमांचित कर रहा था।

अरहर की दाल चुनी-फटकी जा चुकी थी। मैं चाहता था कि आज कुछ विशिष्ट भोजन बने। प्रिंसिपल साहब के दिये रुपये कुलबुला रहे थे ! मुँह तक आयी बात मुँह में ही दबी रही। इच्छा-मार सिपाही-सा मैं अनमना कमरे में बैठ गया। सामने तिपाई पर एक कागज का टुकड़ा पड़ा था। कौन रख गया इसे ? समाधान के लिए ज्योंही उठाया, तो जड़-काठ-सा खड़ा-का-खड़ा रह गया ! मकान-महसूल का पुर्जा था। आज विदित हुआ कि दाना-पानी के अलावा भी, बहुत-सी जिम्मेदारियाँ मेरे सिर पर हैं। घर का खर्चा चल नहीं पाता था। फिर, साढ़े आठ रुपये टैक्स के कहाँ से भरता। अभी जो मालपुए का फितूर मेरे सम्मुख घूम रहा था, यह अब हवा बनकर उड़ चुका था। प्रिंसिपल साहब का भला हो, जिन्होंने मेरे हाथ पर १० रु० रख दिये। खुशी की लहर पुनः गम में परिणत हो गयी। चारों तरफ से आज मैं, अपने को असहाय, दुखी और निराश महसूस कर रहा था। जिन्दगी कड़ुवी-कड़ुवी-सी प्रतीत हो रही थी। कब तक यह कड़ुवापन मेरे मुँह का जायका बिगाड़ता रहेगा। माँ एक पैर लटका ही चुकी हैं। इरादा पढ़ाई चालू रखने का है। आमदनी केवल तीस रुपये मासिक है। कैसे चलेगा इतना सब ! उधेड़ बुन में था कि धड़धड़ाता हुआ विमल अन्दर आ गया।

—मैं कहता था न कि तुम जरूर फर्स्ट आओगे। लो, मुँह मीठा करो।"

विमल दोना मेरी तरफ बढ़ाने लगा, तो मुझे अन्दर-ही-अन्दर रुलाई आने लगी। मैं सोच ही नहीं पा रहा था कि विमल किस तरह का आदमी है। स्वयं फेल हो गया। और मेरे पास होने की खुशी में मिठाई लाया है। उसके चेहरे-मोहरे से स्पष्ट झलक रहा था कि मेरे पास होने का अपरिमित हर्ष है। फेल होने का कटु अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ। हाँ, इतना आज जरूर मालूम हो गया कि फेल होने पर भी विमल पास होने वालों के समान प्रसन्न रह सकता है। रिजल्ट निकलने पर रोज खुदकशी, जल-प्लावन और अन्य तरीकों से मौत के घाट उतरने की खबरें सुनाई पड़ती हैं। आखिर, विमल भी उन्हीं गरीब बच्चों में से है। मेरे अन्दर न उस जैसी जिन्दादिली है, न ही सहनशक्ति। जब-जब जिन्दगी से उबा-ऊबा हूँ, तब-तब उसने मेरा मजाक उड़ाया है। पैरों पर खड़े होने की जितनी ताकत मुझे विमल से मिली, दूसरों से अंश भर भी नहीं। दोनों तरह-तरह की स्वादिष्ट मिठाइयाँ खा रहे थे। माँ की याद आते ही हाथ रुक गये। विमल ने और न खाने का कारण पूछा, पर मेरे मुँह से शब्द नहीं निकला।

—खाते क्यों नहीं? मिठाई पसन्द नहीं आयी? उदास मन से विमल पूछता गया।

एक बात भी नहीं निकली। कदाचित् पहला अवसर था, जब मेरी आँखों से आँसू निकलने लगे। विमल हतप्रभ-विवर्ण हो गया। किन्तु मेरी तरह रोया नहीं। उसकी कसम मुझे लग गयी। बहुत चाहा कि रहस्य का उद्घाटन न करूँ। झूठ बोलने की आदत नहीं थी। फलतः अन्तर्मन खोल देना पड़ा। अभी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि ठोढ़ी उठाते हुए उसने कहा—

—माँ को पहले ही मैं दे आया हूँ। कहीं उनकी बाबत तो नहीं सोच रहे?

इतनी कँप मालूम हुई कि क्या कहूँ ? मिठाई, यद्यपि पुनः कंठगत होने लगी, तथापि दिल कहीं और ही खोया जा रहा था। मैं भले दूसरों की निगाह में तेज, अव्यवसायी होऊँ ! सच यह है कि व्यावहारिकता से कोसों दूर हूँ। विमल इन सब मामलों में निष्णात था कि उसके आगे मैं पसंगा भी नहीं था।

दोपहर, रोटी खाकर उस दिन विमल रिक्शा चलाने नहीं गया। मैं कैसे किस तरह कहता कि वह रिक्शा चलाने क्यों नहीं जा रहा है ? यदि यथार्थतः वह मेरा कहना मान ले, तो हमेशा के लिए रिक्शा चलाना बंद कर दे। उसका आत्माभिमान मुझसे कुछ भी नहीं कहने देता था

मनुष्य चाहे जैसे भी गुजर-बसर करे; उसकी स्थिति एक-न-एक दिन बनती-बिगड़ती अवश्य है। पास ही नहीं, मेरिट लिस्ट में भी मेरा नाम था। पढ़ाई चालू रखने पर प्रतिमास २०) रु० छात्रवृत्ति भी मिल सकती थी! खाने-पीने का अभाव और उठते-बैठते माँ का उलाहना मुझे निर्धारित लक्ष्य से विमुख कर रहा था। माँ से कह नहीं सकता था कि मैं आगे भी पढ़ाई चालू रखूँगा। उनकी बात का विरोध करने का तात्पर्य माँ की कोमल भावना को चकनाचूर करना था। दिन-प्रति-दिन उनका गिरता स्वास्थ्य इसका द्योतक था कि माँ जरा-सी ठोकर बर्दाश्त करने में भी असमर्थ हैं। क्या करना है? यह अब, भली-भाँति समझने लगा था मैं। नौकरी कैसे कहाँ मिले एक ऐसा जटिल प्रश्न था, जिसका समाधान मेरे पास कतई नहीं था। पढ़े-लिखों को देखकर तबीयत अक्सर दहशत में पड़ जाती थी!

संयोगवश, विमल से एक दिन इसी विषय पर विवाद हुआ! नौकरी प्राप्त करने के बारे में वह मेरी कोई बात सुनने-मानने को तैयार नहीं था। भविष्य से ज्यादा, उसे मेरे वर्तमान की चिन्ता थी। वह बराबर विवश करता कि मैं चार साल तथा और पढ़ूँ। नौकरी इन दिनों ग्रेजुएट से कम उम्मीदवार को नहीं मिलती! कोशिश सिफारिश में मने कोई मैट्रिक इण्टर पास हो जाय! प्राथमिकता ग्रेजुएट को ही दी जाती है।

विमल ने क्यों? हर मिलने-जुलने वालों ने मुझसे आगे पढ़ते रहने के लिए कहा। आर्थिक संकट से छुटकारा दिलाने का

भी नहीं बताया। मुझ जैसे; लाखों महत्वाकांक्षी, रोज अपना भविष्य बनाते-बिगाड़ते हैं। मेरिट में, मेरा नाम देखकर कदाचित् परिचितों को कुछ-कुछ सहानुभूति हो चली थी।

निदान कोई नहीं मिल पा रहा था समस्या का। अनायास घूमते-घामते एक दिन सिविल एरिया पहुँचा, तो सुषमा की याद आ गई। बैंक के नजदीक पहुँचकर सोचने लगा कि ऊपर चढ़ूँ, तो कैसे? किस निमित्त जाना चाहता हूँ। नीचे खड़ा, इसी दांव-पेंच में उलझा रहा! गर्दन उठाने भी नहीं पाया था कि सहसा सुषमा दीख गयी। हक्का-बक्का सा, अपनी झेंप मिटाने के लिए उसकी तरफ देखने लगा! समझते देर नहीं लगी कि सुषमा बाजार से अभी-अभी लौटी है। मेरी विवर्ण हुलिया देखकर उसने पूछा—

—कैसे खड़े हैं? किसी की प्रतीक्षा है शायद?

—न···नहीं! जल्दी में इतना भर निकला मेरे मुँह से।

सुषमा, बिना और कुछ सुने खटखट करती ऊपर चढ़ गयी।

विचार था कि शायद स्वयं सुषमा मुझसे ऊपर चलने के लिए कहेगी। जब, आगे, बिना कुछ कहे-सुने वह ओझल हो गयी, तो मेरे मस्तिष्क में अनेक ख्याल उठने लगे। निश्चित नहीं कर सका कि मुझे ऊपर जाना चाहिए या नहीं? लेकिन, सुषमा मेरी उक्त स्थिति-उपस्थिति का बयान भाभी से करेगी अवश्य?···

कुछ अच्छा नहीं लग रहा था, यों ही चले जाना। भाभी मन में इधर-उधर सोचने लगेंगी! सुषमा से मुलाकात न होती तो कोई बात नहीं! जब स्वयं वह आगमन का उद्देश्य पूछने लगी, तो मेरा वापिस जाना किसी भाँति भी संगत नहीं है। टाल-टूल करता रहा, करता रहा। अन्ततोगत्वा किसी अप्रकट शक्ति के वशीभूत चला ही गया ऊपर।

भाभी कमरे में अस्त-व्यस्त लेटी थीं! चिक से उन्हें सोता झांककर मेरी इच्छा वापिस लौटने की हुई! भँवर जाल में पड़ गया था। गर्मी की ऋतु! ऊपर से चिलचिलाती धूप भरी दोपहर! भले आदमी ऐसे

वक्त पराये घर नहीं जाते। खा-पीकर थोड़ी देर नींद आ ही जाती है। सुषमा अभी-अभी आयी थी। दिखाई क्यों नहीं पड़ रही है? अब, जब आ ही गया हूँ, तो बिना आगमन की सूचना दिये, तो लौटूंगा नहीं। पहले जैसा खड़ा रहता, तो टाइगर (कुत्ते) को भी मेरे आने का भान न होता। पार्श्व-मोड़ से मैं आगे बढ़ा, तो अपने कमरे में चलती-फिरती सुषमा दिखाई पड़ गयी। शायद अच्छा नहीं लगा मुझे देखकर। देहलीज के समीप प्रायः दो सेकेंड खड़ा रहा। फिर भी मुझसे उसने अन्दर बैठने के लिए नहीं कहा।...तो नहीं आना चाहिए था क्या मुझे? पर, भाभी जब सो रही हैं, तो खामखाह उन्हें जगाकर व्यर्थ तकलीफ क्यों दूँ? जिस द्विविधा का बंधन थोड़ी देर तक सुषमा को संकुचित कर रहा था, उसका समाधान यह कहकर निकाला उसने कि आइये भाभी के पास ही चलें!

सुषमा के उक्त शब्द रग-रग में सिहरन पैदा करने लगे! कदमों का अनुसरण करता हुआ मैं भाभी के कमरे में पहुँच गया।

टेबुल फैन फुलस्पीड पर चल रहा था। रेडियो की खोल जमीन चूम रही थी। सुषमा ने घुसते ही भाभी को जगा दिया। जब तक आँखें नहीं खुली थी, सुषमा का इस तरह एकाएक जगाना शायद भला नहीं लगा उन्हें। मुझे आया देख कृत्रिम हँसी बिखेरती हुई धोती ठीक करके बैठ गयी।

—भई, बड़ी खुशी हुई, तुम्हारा नतीजा जानकर! क्या विचार है अब?

बैठते ही भाभी ने दो नली छोड़ दी। पशोपेश में पड़ गया। कुछ भी जवाब नहीं देते बना।

—बहरहाल तो पढ़ाई जारी रखने का विचार है।

—गवर्नमेंट कालिज में जाओगे क्या?

—इसका निश्चय तो अभी तक नहीं किया है।

—फिर भी जाना गवर्नमेंट कॉलेज में ही चाहिए।

—जी !

इतना भर निकला मेरे मुंह से। प्रसंग बदलना चाहता था। जिस तरह आज मैं उत्तर दे रहा था, वह मेरे बिखरे उत्साह का द्योतक था।

अनन्तर, माँ के सम्बन्ध में पूछने लगीं भाभी। संक्षेप में कुशल-क्षेम बताकर चुप हो गया। अकस्मात् उनके मुँह से विमल का नाम सुनकर मुझे काठ मार गया।

—कौन हैं ये विमल ! तेरा क्या लगता है ?

—कोई नहीं ! ऐसे मित्र है मेरा।

—वह रिक्शा भी चलाता है क्या ?

भाभी के मुँह से ये सब सुनकर मैं विचार-शून्य हो गया। इन्हें ये सब बातें कैसे मालूम हुईं ! लगातार सोचता रहा।

पुनः भाभी बोलीं—

—मुझे तो क्या पता चलता। एक दिन सुक्खू बताने लगा कि तू भी कुछ दिन रिक्शा चला चुका है !···

विमल तक ही बात सीमित रहती, तो मैं अपने को किसी तरह प्रकृतिस्थ कर लेता। अपने बारे में सुनकर मेरा चेहरा पीला पड़ गया। केवल भाभी होतीं, तो शायद मैं रो पड़ता। सुषमा के सामने ऐसा कुछ तो कर नहीं सकता था। फलतः उनकी कही बात का समर्थन करता गया।

—यहाँ तो कुछ भी नहीं मालूम था। तूने भी कभी कुछ नहीं कहा ?

गोया, उन्हें अपने आर्थिक संकट से अवगत करा दिया होता, तो शायद वे मेरी मदद कर देतीं।

मेरे हर क्षण उतरते मुँह को देखकर भाभी कुछ सँभल गयीं। जो कुछ हुआ था, उससे सुषमा को काफी क्लेश पहुँचा था। उसका निस्तेज उदास मुँह इसका द्योतक था।

विशेष प्रयोजन से न तो मैं आया था और न ही अधिक देर वहाँ रुकना चाहता था। बातें अधिकांशतया मेरी प्रकृति के विपरीत हुई थीं। मामी ने आप-बीती की टोह ली, तो इसने कौन बड़ी बात हो गयी। अपने से चले जाना कुछ ठीक नहीं जँचा मुझे। दस-पाँच मिनट इधर-उधर की बातें कर मैं उठा।

चलने को हुआ तो मामी ने पुनः बैठ जाने को कहा। सुषमा नींबू का शर्बत तैयार करने चली गयी थी। मेरी कल्पना थी कि शायद थोड़ा मिष्ठान्न नमकीन भी सामने आये। अस्तु।

कहने-सुनने से शर्बत पी गया। अन्दर से यही विचार उठ रहा था कि मुझे इस तरह का व्यवहार बिलकुल समाप्त कर देना चाहिए। जहाँ ये सब विरोधी बातें उठीं, वहीं यह भी सोचने लगा कि आज सुषमा अपने हाथ से मेरे लिए शर्बत तैयार करके लायी है। दिल तो यही चाह रहा था कि वह यदि दस-बीस गिलास भी ले आये, तो निर्विरोध गट-गट कर जाऊँ। शर्बत पीने से पूर्व जिस तरह के विचार मुझे तोड़-मरोड़ रहे थे, वे अब एकदम किनारे लग गए थे।

बैंक से बाहर निकला ही था कि अचानक बिल्ली रास्ता काट गयी। शकुन-अपशकुन मैं नहीं मानता। गरीबों के पास समय ही कहाँ है कि इन्हें भी महत्व दें। हजारों बार नेवले-बिल्ली मेरा रास्ता काट चुके हैं। इन्हें लेकर मेरे मस्तिष्क में कभी कोई हरकत नहीं हुई। कभी सोचा तक नहीं कि बिल्ली का रास्ता काटना अशुभ समझा जाता है।

स्वाभाविक कदम बढ़ाता हुआ मैं घर लौट आया। पड़ोसी से विदित हुआ कि विमल दुर्घटना-ग्रस्त हो गया। सुनते ही मैं तो जैसे बेहोश हो गया। इतना विवेक भी नहीं रहा कि घटना कैसे क्यों हुई? आदि भी पूछ लूँ।....

जो दूसरों को रिक्शे पर बैठाकर ले जाता था, आज वही रिक्शे पर लेटा, अस्पताल ले जाया जा रहा था। विमल मेरे साथ रहता था। फलतः मुहल्ले के अधिकांश लोग उससे परिचित हो गए थे।

—फिर भी जाना गवर्नमेंट कॉलेज में ही चाहिए।

—जी !

इतना भर निकला मेरे मुंह से। प्रसंग बदलना चाहता था। जिस तरह आज मैं उत्तर दे रहा था, वह मेरे बिखरे उत्साह का द्योतक था।

अनन्तर, माँ के सम्बन्ध में पूछने लगीं भाभी। संक्षेप में कुशल-क्षेम बताकर चुप हो गया। अकस्मात् उनके मुँह से विमल का नाम सुनकर मुझे काठ मार गया।

—कौन हैं ये विमल ! तेरा क्या लगता है ?

—कोई नहीं ! ऐसे मित्र है मेरा।

—वह रिक्शा भी चलाता है क्या ?

भाभी के मुँह से ये सब सुनकर मैं विचार-शून्य हो गया। इन्हें ये सब बातें कैसे मालूम हुईं ! लगातार सोचता रहा।

पुनः भाभी बोलीं—

—मुझे तो क्या पता चलता। एक दिन सुक्खू बताने लगा कि तू भी कुछ दिन रिक्शा चला चुका है !...

विमल तक ही बात सीमित रहती, तो मैं अपने को किसी तरह प्रकृतिस्थ कर लेता। अपने बारे में सुनकर मेरा चेहरा पीला पड़ गया। केवल भाभी होतीं, तो शायद मैं रो पड़ता। सुषमा के सामने ऐसा कुछ तो कर नहीं सकता था। फलतः उनकी कही बात का समर्थन करता गया।

—यहाँ तो कुछ भी नहीं मालूम था। तूने भी कभी कुछ नहीं कहा ?

गोया, उन्हें अपने आर्थिक संकट से अवगत करा दिया होता, तो शायद वे मेरी मदद कर देतीं।

मेरे हर क्षण उतरते मुँह को देखकर भाभी कुछ सँभल गयीं। जो कुछ हुआ था, उससे सुषमा को काफी क्लेश पहुँचा था। उसका निस्तेज उदास मुँह इसका द्योतक था।

विशेष प्रयोजन से न तो मैं आया था और न ही अधिक देर वहाँ रुकना चाहता था। बातें अधिकांशतया मेरी प्रकृति के विपरीत हुई थीं। मामी ने आप-बीती की टोह ली, तो इसमें कौन बड़ी बात हो गयी। अपने से चले जाना कुछ ठीक नहीं जँचा मुझे। दस-पाँच मिनट इधर-उधर की बातें कर मैं उठा।

चलने को हुआ तो मामी ने पुनः बैठ जाने को कहा। सुषमा नीबू का शर्बत तैयार करने चली गयी थीं। मेरी कल्पना थी कि शायद थोड़ा मिष्ठान्न नमकीन भी सामने आयें। अस्तु।

कहने-सुनने से शर्बत पी गया। अन्दर से यही विचार उठ रहा था कि मुझे इस तरह का व्यवहार बिलकुल समाप्त कर देना चाहिए। जहाँ ये सब विरोधी चीजें उठीं, वहीं यह भी सोचने लगा कि आज सुषमा अपने हाथ से मेरे लिए शर्बत तैयार करके लायी है। दिल तो यही चाह रहा था कि वह यदि दस-बीस गिलास भी ले आये, तो निर्विरोध गट-गट कर जाऊँ। शर्बत पीने से पूर्व जिस तरह के विचार मुझे तोड़-मरोड़ रहे थे, वे अब एकदम किनारे लग गए थे।

बैंक से बाहर निकला ही था कि अचानक बिल्ली रास्ता काट गयी। शकुन-अपशकुन मैं नहीं मानता। गरीबों के पास समय ही कहाँ है कि इन्हें भी महत्व दें! हजारों बार नेवले-बिल्ली मेरा रास्ता काट चुके हैं। इन्हें लेकर मेरे मस्तिष्क में कभी कोई हरकत नहीं हुई। कभी सोचा तक नहीं कि बिल्ली का रास्ता काटना अशुभ समझा जाता है।

स्वाभाविक कदम बढ़ाता हुआ मैं घर लौट आया। पड़ोसी से विदित हुआ कि विमल दुर्घटना-ग्रस्त हो गया। सुनते ही मैं तो जैसे बेहोश हो गया। इतना विवेक भी नहीं रहा कि घटना कैसे क्यों हुई? आदि भी पूछ लूँ।""

जो दूसरों को रिक्शे पर बैठाकर ले जाता था, आज वही रिक्शे पर लेटा, अस्पताल ले जाया जा रहा था। विमल मेरे साथ रहता था। फलतः मुहल्ले के अधिकांश लोग उससे परिचित हो गए थे।

अस्पताल में पहुँचा, तो मुझे कँपकँपी-सी आने लगी। विमल से मिलने की इजाजत लेकर मैं भागता हुआ उसके बिस्तरे के समीप पहुँच गया। वह बेहोश पड़ा था। सर पर जिस ढंग से पट्टी बँधी थी, वह अत्यन्त भयावह थी। दाहिने हाथ में भी शायद चोट आ गयी थी। उसे पहचानना मुश्किल-सा था। कितना कष्ट पहुँचा होगा! सेरों खून बहा होगा! यह सब सोच-सोचकर मेरा सर घूमने लगा था। अधिक समय मैं बैठ भी नहीं सकता था वहाँ। डॉक्टर विमल के बारे में मुझसे कुछ पूछ रहा था। अचानक विमल के मुँह से निकला—

—तुम आये हो अमर भैया!

शायद मैं चीख पड़ता! किसी तरह रुलाई रोककर मैंने 'हूँ' कह दिया। मैं और भी कुछ कहना चाहता था। नर्स ने संकेत से मुझे चुप रहने को कहा, तो मेरे मुँह से फिर एक शब्द नहीं निकला।

उसके कष्ट-उत्पीड़न की तो कोई इन्तिहाँ नहीं थी। यह कदाचित् उसका निजी साहस था कि उसकी आँखों से आँसू नहीं निकल रहे थे। स्यात् वह सोच रहा था कि वह रोए-कॉंखे भी तो किसके लिए! मैं ही तो था एक। माँ-बाप कब मर गए, इस बाबत मैंने विमल से कभी कुछ नहीं पूछा था। चाचा-चाची, बहन-भाई भी हैं कोई—इसका उल्लेख भी विमल ने कभी नहीं किया था। ऐसे वक्त लोग अपने माँ-बाप अथवा परिचित हमदर्दों को याद करते हैं। थोड़ी-सी अनबन होने पर भी एक हो जाते हैं। काश, कि मेरे अतिरिक्त भी विमल की खबर लेने वाला कोई होता! ··

मेरे आगे इस वक्त सबसे बड़ा सवाल क्षतिग्रस्त रिक्शे का था। माना कुछ दिन में विमल के जख्म पुर जायँगे! धीरे-धीरे स्वास्थ्य भी सुधर जायगा! लेकिन कैसे चलाएगा? खून का घूंट पी गया होगा—रिक्शा मालिक टूटा-फूटा रिक्शा देखकर! विमल जैसे सैकड़ों मरते-मिटते रहें! उसे क्या मतलब इस सबसे! यही सोचकर चौधरी ने गम

खा लिया होगा कि वापिस आने दा अस्पताल से। एक-एक पाई वसूल लूँगा उससे।

स्वभाव का इतना टेकी था कि मेहनत किये बगैर एक कौर नहीं खाता था। यदि उसका धंधा छूट गया, तो निश्चित ही मेरा साथ छोड़ देगा! मोसम्बी, संतरा, दूध आदि लेकर मैं जाता, तो विमल इतना अवश्य एक बार कह देता था कि बहुत पैसे जाया कर रहे हो भैया। उसकी बात जब काट देता, तो वह चुप जरूर हो जाता, किन्तु भीतर-ही-भीतर मेरे लिए चिन्ता करने लगता था। कैसे बहुत-सी बातें, वहाँ वह मुझसे कहता?

माँ का जितना स्नेह मुझ पर था, उतना ही विमल पर। अस्पताल से वापिस लौटकर मैंने जब माँ को दुर्घटना का विवरण दिया, तो उनके रोंगटे खड़े हो गए! मेरे समझाने-बुझाने पर भी वह विमल को देखने गयी। सिर से पैर तक बँधी हुई पट्टी देख उनकी आँखें गीली हो गयीं। उसके खान-पान की उन्हें काफी चिन्ता रहती। मैं जिस दिन फल खरीदना भूल जाता, तो वह बार-बार मुझे स्मरण दिलाती रहती थी।

घी-दूध की कौन कहे? गरीबों को रूखी-सूखी रोटियाँ भी दो वक्त नहीं नसीब हो पाती! कह नहीं सकता कि किस प्रकार मैं विमल की सेवा-सुश्रूषा कर रहा था। अनेक बार उसने मुझसे कहा था कि उसके बाक्स में कुछ रुपये हैं। मैं उन्हें भी निकाल लूँ। मेरी प्रकृति के बिलकुल विपरीत थी यह बात! माँ के सर में अक्सर दर्द होने लगता था। ऐस्प्रो, वेदना निग्रह रस की पुड़िया लाकर उन्हें भी खिला देता था। स्वयं भी, माँ इतना संकोच करती थी कि हफ्तों मुझे उनकी शिकायत का पता ही नहीं चल पाता था। दुःख सहने की इतनी अभ्यस्त हो चुकी थीं कि अक्सर मुझे हैरत में पड़ जाना पड़ता था। कैसे उन्हें धैर्य बंधाता? ढलते स्वास्थ्य की निगरानी करता? और उन्हें प्रसन्न रख पाता? बाबू जी के देहावसान के बाद से माँ इतनी अधिक शिथिल हो गयी थीं कि उनके भविष्य की बात कुछ सोच सकने की मुझमें सामर्थ्य नहीं थी।

सहपाठियों ने एडमीशन ले लिया था। मैं पशोपेश में था कि कैसे क्या करूँ? आर्थिक स्थिति कुछ करने की अनुमति नहीं देती थी। ट्यूशन के अतिरिक्त जीविका का और कोई साधन नहीं था। या तो उक्त रुपयों से, महीने भर के लिए लकड़ी, नोन, तेल आदि खरीदता या अपनी पढ़ाई पर खर्च करता। माँ बराबर कहती हैं कि पढ़ाई-लिखाई के चक्कर में न पड़कर मैं छोटी-मोटी नौकरी ढूंढ़ू! संघर्षों से लड़ने की जहाँ अपूर्व ताकत थी, वहीं माँ की एक बात दुनिया की समस्त आज्ञाओं में सर्वोपरि थी। निश्चय कुछ भी नहीं कर पा रहा था। इन्टर प्राइवेट तरीके से भी तो कर सकता हूँ? कुछ स्थिरता से यह तर्क मेरे मस्तिष्क में बैठ गया। इसके अलावा और कोई दूसरा मार्ग मुझे सूझ भी तो नहीं रहा था। माँ को भी केवल इस तरह खुश रखा जा सकता था। विश्वास भी था कि प्राइवेट तौर से भी मैं इन्टर परीक्षा में अच्छे अंकों से पास हो जाऊँगा। प्रिन्सिपल साहब से अनुरोध करूँगा तो रोज वह मुश्किल विषय दो एक घंटा अवश्य पढ़ा दिया करेंगे। अस्तु।

प्रिन्सिपल साहब की बदौलत मुझे उनके किसी मित्र के कारखाने में ट्रॅविंग एजेन्ट की जगह मिल गयी। काम रुचि के विपरीत था। लेकिन पेट भरने का प्रश्न जब मुँह बाये खड़ा हो, उस वक्त मैं अपनी रुचि-अरुचि को कहाँ तक महत्व देता! एक शहर से दूसरे शहर में जाता। आर्डर प्राप्त करना और प्राप्य वेतन से किसी तरह घर का खर्च चलाता। विमल काफी कमजोर हो गया था। गरीब आदमी के शरीर से सेरों खून निकल जाय, तो उसका एक पैर तो उस वक्त अर्थी पर रखा रहता है। विमल कभी नहीं चाहता था कि वह मुफ्त में पड़ा-पड़ा रोटियाँ तोड़े। शायद मेरे अमित स्नेह और माँ की मीठी फटकार ने इन दिनों चुपचाप घर में रहने के लिए विवश कर दिया था।

शुरू में मैनेजर साहब मुझे आस-पास के दौरे पर भेजते रहे! पन्द्रह-पन्द्रह दिन पर मैं घर आता था। माँ से मिलता तो उनकी आँखों

आनन्दाश्रु छलकने लगते थे। अक्सर यात्रा की परेशानियों से खीझ उठता ! पर झक के अन्त में शान्त हो जाना पड़ता था। विमल मुझे देखते ही काम शुरू करने की आज्ञा माँगने लगता था। उसके अशक्त रक्तहीन शरीर को देख मैं किसी स्थिति में भी उसे रिक्शा चलाने की अनुमति नहीं दे सकता था। मुझे रह-रह यह ख्याल आने लगता कि कहीं वह और परेशान न हो जाय। रात-दिन पैडल चलाने वाले के पैर में गठिया आदि भयानक रोग भी तो हो सकते हैं। मन तो यही कहता था कि चाहे जो हो, विमल को मौत के मुँह में नहीं ढकेलूंगा। उसे अच्छा-बुरा चाहे जो लगे। यदि वस्तुतः वह मुझे अपना भाई मानता है, तो अब उसे मेरे बनाये रास्ते पर ही चलना होगा। कह-सुनकर उसे भी तो काम दिलाया जा सकता है। प्रिन्सिपल साहब की वजह से मैनेजर साहब की कृपादृष्टि मुझ पर है ही ! कुछ नहीं तो दवा आदि भरने का काम बहरहाल विमल को मिल सकता है। आज मैं उनसे अवश्य बात-चीत करूँगा।

विमल की राय भी तो लेनी चाहिए ! ख्याल उठा कि इस बारे में उससे पूछने की आवश्यकता ही क्या है ? काम पक्का हो जायगा, तो उससे कह दूँगा कि चल ! आज से तू भी कारखाने में काम करेगा। कितना खुश होगा ?...

अभी तक विमल ने मेरी कोई बात काटी नहीं थी। इस बार जब मैं टूर पर जाने लगा, तो वह भी साथ चलने की जिद करने लगा। साथ ले चलने में मुझे कोई आपत्ति नहीं थी। किन्तु उसका चलना कितना सार्थक हो सकता है ? यही बात मेरी समझ में नहीं आ पाती थी। उसे घर में बेकार बैठे महीने से कुछ ऊपर हो गया था। हरदम उसकी शारीरिक कमजोरी की चिन्ता में ही नहीं खोया जा सकता था। उसे भी अनुचित प्रतीत होता है कि भैया ने मुझे अपनी दया पर छोड़ रखा है। जहाँ तक उसके स्वभाव का प्रश्न है, वह स्वप्न में भी अपने आत्माभिमान के विरुद्ध सुने स्वर बर्दाश्त नहीं कर सकता था। समझा-बुझाकर मैं कारखाने

चला गया। मैनेजर साहब से विमल की नौकरी के सम्बन्ध में पूछ लिया। आदमी रखने की गुंजाइश नहीं थी। फिर भी उन्होंने मेरी बात काटी नहीं। शाम, उन्होंने विमल को साथ लाने की अनुमति दे दी। सच पूछो, तो उस दिन मुझे बहुत ही खुशी हुई।

रात, नौकरी की खुशखबरी सुनाकर दूसरे दिन विमल को कारखाने ले गया। उसने मुझे इस तरह देखा, जैसे कोई भूखा व्यक्ति खूराक पा गया हो। पहले मैंने खास-खास कर्मचारियों से उसका परिचय करा दिया। अनन्तर मैनेजर साहब के कमरे में चला गया।

रिक्शा छोड़ने से विमल के मुँह पर भी ताजगी आने लगी। उसका रुग्ण-क्षीण शरीर शनैः-शनैः पनपने लगा। माँ खुद नहीं चाहती थीं विमल रिक्शा चलाये। हम दोनों के साथ उन्हें भी बेहद प्रसन्नता हुई। अमर जहाँ उनका था, वहीं विमल भी उन्हें अपने लड़के की तरह प्रिय था।

मैं जिन दिनों टूर पर जाता उन दिनों घर में खाली दो प्राणियों का खाना बनता था। महीने में छः-सात दिन के लिए आता और फिर चला जाता। मेरी तनखाह की जानकारी अभी तक किसी को नहीं हुई थी। मासिक वेतन के साथ प्रतिमास मुझे कुछ ऊपरी आमदनी भी हो जाती थी। तनखाह मैं पूरी-की-पूरी माँ के हाथ में रख देता था।

पहले-पहल जब प्रिन्सिपल साहब से मैंने नौकरी की बात कही थी, तो कुछ देर वे साश्चर्य मुझे घूरते रहे। हर तरह की सुविधा देने के लिए वे तैयार थे। मैं कृत-संकल्प था कि प्रिन्सिपल को समझा-बुझाकर नौकरी पाने की हर कोशिश करूँगा। मेरे दुराग्रह से अन्ततोगत्वा उन्हें हार माननी ही पड़ी! वे भी सहमत हो गए कि मैं प्राइवेटली ही इंटर कर लूँ!...आज माँ न होतीं, तो मैं कदाचित् कॉलेज में ही पढ़ता होता। माँ की बात ऊपर रखनी थी। इसलिए नौकरी करने का फैसला कर लिया। दिन खाने-पीने के थे और कर रहा था नौकरी! श्रम से

नहीं मांगता था ! किन्तु स्वाभिमान पर चोट लगती, तो मज्जा-मज्जा चरमरा उठती थी । सब कुछ होता ! माँ का दुःखी चेहरा जिस क्षण सामने आ जाता, मेरा सारा रोष हवा हो जाता था ।

नौकरी के संग पढ़ाई भी जारी रखूं, यह एक पेचीदा सवाल था मेरे आगे । भगवत्कृपा से काम ऐसा मिला था कि मुश्किल से दो-चार घंटा सुस्ताने को मिलता था । ईमानदारी बरतता था, इसलिए दिन-रात कारखाने के काम से इधर-उधर चक्कर लगाना पड़ता था । हर तरह की चापलूसी कम्पनी की समृद्धि के लिए करनी पड़ती थी । यदि व्यक्तिगत काम होता, तो कदाचित् मेरे मुँह से एक शब्द भी इधर-उधर का नहीं निकलता । नयी-नयी नौकरी थी । ज्यादा-से-ज्यादा आर्डर प्राप्त कर अपनी नौकरी जो पक्की करनी थी पहले मुझे ।···

मेरी तुलना में विमल को पैसे बहुत कम मिलते थे । अच्छा केवल इतना था कि उसे बैठे-ही-बैठे सारा काम करना पड़ता था । रोज समय पर कारखाने जाता और ठीक वक्त वापिस आ जाता था । मेरी घुड़दौड़ की तो एक मंजिल ही नहीं थी । मैं ट्रेविल एजेंट कहलाता तो विमल कारखाने का साधारण नौकर । यद्यपि कोई खास अन्तर नहीं था । सम्बन्धित दोनों उसी कारखाने से थे । सच पूछो, तो विमल की नौकरी अधिक आरामदायक थी । बाहर जिस दिन मेरी तबीयत खराब हो जाती, उस दिन दिलासा देने वाला भी कोई मेरे पास नहीं रहता था । कितनी याद आया करती, उस वक्त मुझे माँ की ! सहज अनुमान लगा सकता हूँ कि जब मेरी हालत इतनी गिर जाती थी, तो उन्हें क्या महसूस होता होगा ? ईश्वर ने विमल को अपना बना दिया है । जब उनकी तबीयत ज्यादा घबड़ाती होगी, तो धीरज बँधाता होगा विमल ! विमल घर में माँ के साथ न रहता, तो मैं उनको लेकर कहाँ-कहाँ भटकता ? कदाचित् मिली नौकरी छोड़नी पड़ती तब !

काम में लगा रहता, तो कुछ नहीं ! लस्त होकर रात बिस्तर पर पड़ता, तो इधर-उधर की सैकड़ों चिन्ताएँ आ घेरती थीं मुझे । मुझे

क्या बनना है ? निर्धारित लक्ष्य से कितना आगे-पीछे हूँ ? कभी-कभी तो जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता था। कहीं मैं बदल तो नहीं रहा हूँ ? मेरे उर्वर-विचार, महत्वाकांक्षाएं किसी अनुपजाऊ भूमि पर तो नहीं फिसल पड़ी हैं। लाख कमजोरी भरी दुनिया मेरे से सामने आती, फिर भी यथाशक्ति मैं तटस्थ रहने की कोशिश करता था। मैंने सीख लिया था कि जब जितने नये कदम रखूंगा, मुझे उतनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। अब शकुन-अपशकुन, शुभ-अशुभ का विचार मुझे छू तक नहीं गया था। बिल्ली रास्ता काटती अथवा कोई चलते समय छींकता-टोकता ! बिना विचारे गन्तव्य तक बढ़ जाता था। कार्य सम्पन्न होने पर भी प्रसन्न रहता और कार्यान्वित न होने पर भी !

———

विद्यार्थी मात्र नहीं रह गया था। स्कूल में किन-किन सहपाठियों से मेरी बोलचाल थी और कौन-कौन मुझसे ईर्ष्या करते थे? सब छिन्न-भिन्न हो गए थे। विमल के अतिरिक्त यदि मुझे और किसी की याद सताती थी, तो एकमात्र सुषमा की। प्यार किसी के माँगने-खरीदने से नहीं मिलता। सुषमा के प्रति मेरा रुझान अप्रकट थी। जिस समाज की ड्योढ़ी पर सुषमा खड़ी थी उससे अनवगत नहीं था मैं! हीन-बुद्धि का नहीं था, फलतः सुषमा को दिमाग से एकदम निकाल भी नहीं देना चाहता था। मैं समझदार हुआ। दुनिया की ऊँचाइयाँ मापीं? सुषमा के सम्बन्ध में निश्चित कुछ भी न कर सका! भौतिक सुख या आनन्द के लिए मैं उसे नहीं चाहता था। सुषमा ही कदाचित् वह भयंकर जीव थी; जिसने खट्टे-मीठे अनेक विचार मेरे भीतर भरे निकाले! विवेक तन्तुओं के इर्द-गिर्द सुषमा चक्कर काटती ही रहती थी। यहाँ तक कि अक्सर दिमाग गर्म हो जाता! अस्थिरता आ जाती! ···अस्तु।

माँ जब विवाह के लिए जिद करती, तो प्रसंग के छिड़ते ही मुझे सुषमा का स्मरण आने लगता था। यूँ किसी को कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि सुषमा के लिए मेरे दिल में गहरा स्थान है। मैं उसे चाहता-पसंद करता हूँ।···विमल को मैंने आप-बीती सुना दी थी। किंतु विमल के सम्बन्ध में उसे कुछ भी नहीं बताया था। एक बार कुछ-कुछ संदेह जरूर हो गया था विमल को! उस दिन मैंने आवेश में उसे भला-बुरा भी कह दिया था। इतना सूझ-बूझ और कायदे का आदमी था वह कि आइन्दा उसने उस सम्बन्ध में कभी कोई बात नहीं कही।

क्या बनना है ? निर्धारित लक्ष्य से कितना आगे-पीछे हूँ ? कभी-कभी तो जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता था। कहीं मैं बदल तो नहीं रहा हूँ ? मेरे उर्वर-विचार, महत्वाकांक्षाएं किसी अनुपजाऊ भूमि पर तो नहीं फिसल पड़ी हैं। लाख कमजोरी भरी दुनिया मेरे से सामने आती, फिर भी यथाशक्ति मैं तटस्थ रहने की कोशिश करता था। मैंने सीख लिया था कि जब जितने नये कदम रखूंगा, मुझे उतनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। अब शकुन-अपशकुन, शुभ-अशुभ का विचार मुझे छू तक नहीं गया था। बिल्ली रास्ता काटती अथवा कोई चलते समय छींकता-टोकता ! बिना विचारे गन्तव्य तक बढ़ जाता था। कार्य सम्पन्न होने पर भी प्रसन्न रहता और कार्यान्वित न होने पर भी !

विद्यार्थी मात्र नहीं रह गया था। स्कूल में किन-किन सहपाठियों से मेरी बोलचाल थी और कौन-कौन मुझसे ईर्ष्या करते थे? सब छिन्न-भिन्न हो गए थे। विमल के अतिरिक्त यदि मुझे और किसी की याद सताती थी, तो एकमात्र सुषमा की। प्यार किसी के माँगने-खरीदने से नहीं मिलता! सुषमा के प्रति मेरी रुझान अजकट थी। जिस समाज की, ड्योढ़ी पर सुषमा खड़ी थी उससे अनवगत नहीं था मैं! हीन-वृत्ति का नहीं था, फलतः सुषमा को दिमाग से एकदम निकाल भी नहीं देना चाहता था। मैं समझदार हुआ! दुनिया की ऊँचाइयाँ मापीं? सुषमा के सम्बन्ध में निश्चित कुछ भी न कर सका! भौतिक सुख या आनन्द के लिए मैं उसे नहीं चाहता था। सुषमा ही कदाचित् वह भयंकर जीव थी; जिसने खट्टे-मीठे अनेक विचार मेरे भीतर भरे निकाले! विवेक तन्तुओं के इर्द-गिर्द सुषमा चक्कर काटती ही रहती थी। यहाँ तक कि अक्सर दिमाग गर्म हो जाता! अस्थिरता आ जाती! ···अस्तु।

माँ जब विवाह के लिए जिद करतीं, तो प्रसंग के छिड़ते ही मुझे सुषमा का स्मरण आने लगता था। यूँ किसी को कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि सुषमा के लिए मेरे दिल में गहरा स्थान है। मैं उसे चाहता-पसंद करता हूँ।···विमल को मैंने आप-बीती सुना दी थी। किंतु विमल के सम्बन्ध में उसे कुछ भी नहीं बताया था। एक बार कुछ-कुछ संदेह जरूर हो गया था विमल को! उस दिन मैंने आवेश में उसे भला-बुरा भी कह दिया था। इतना सूझ-बूझ और कायदे का आदमी था वह कि आइन्दा उसने उस सम्बन्ध में कभी कोई बात नहीं कही!

बचपन की ओर एक बार दृष्टि दौड़ाता हूँ, तो महान् विस्मय होता । पिता के रहते भी दुःख-ही-दुःख था । किसी तरह आधा-तिहाई खा कर सब पेट पालते थे । आज ईश्वर की कृपा से जब मैं कमाने लगा हूँ, तब भी चिन्ता के बादल अपना तांता लगाये रहते हैं । यह अच्छी तरह जानता हूँ कि हर महत्वाकांक्षी को कठिनाइयों का हिस्सा ज्यादा मिलता है ! और, यदि वह गमगीन बना रहे, तो उसकी क्रियाशीलता नष्टप्राय हो जाती है । बिखरे विचारों को स्थायित्व नहीं मिल पाता । अक्सर, अपने को अविवेकी, हीन और पता नहीं क्या-क्या समझने लगता है । न चाहते हुए भी उक्त कमजोरियाँ मुझसे होड़ लेने को उद्यत थीं । सुषमा ही शायद मेरी एक कमजोरी थी । उसे मैं ममत्व-दृष्टि से देखता था । सुषमा से यदि उक्त कमजोरी का उद्घाटन कर दूँ, तो वह एक बार जरूर कड़क उठेगी ।

भले प्रसंग समाप्ति पर उसे अपनी गलती महसूस हो और मुझसे क्षमा-याचना की जरूरत पड़े । यह सत्य है कि तुरन्त वह किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँच पाती । माँ जब बार-बार मुझसे शादी करने को कहतीं, किसी को जन्म-कुण्डली देने की सहमति माँगतीं, तो मैं पुनः एक नया बहाना ढूँढ़ लेता ! माँ कुछ समझती न हों, सो बात नहीं। मेरे ऊट-पटांग जवाब की कैसी प्रतिक्रिया होती होगी ? इसे सोचकर अक्सर ग्ला आ जाती थी मुझे । यह मैं स्पष्ट देख रहा था कि अंदर-ही-अंदर माँ गल जा रही हैं । अब, यदि उनमें कोई भी ख्वाहिश शेष है, तो बहू देखने की सच भी तो है । दोनों वक्त खाना बनाना, बर्तन माँजना तथा घर सैकड़ों अन्य कार्य निबटाना ! दीपक में तेल की मात्रा का अनुमान ल कर ही प्रकाश की आशा की जाती है । बत्ती उकसाने से रोशनी कुछ अधिक फैलेगी ! किन्तु नेह उसका अतिशीघ्र समाप्त हो जायगा पता है कि माँ का वरद हस्त अधिक समय तक मेरे मस्तक प रहेगा । चंद दिनों की मेहमान भर हैं वे । पड़ जायँगी, तो कोई उनके प्राण नहीं बचा पायेगी ।

जितने दिन दूर पर रहता, हर घड़ी यही चिन्ता मुझे परेशान करती रहती ! आखिर ! माँ को कब तक गफलत में रखूँगा ! उन्हें क्या मालूम मेरे भीतर की बात ! उन्हें जब तक पता नहीं चलेगा, वे अपनी जिद पर अड़ी रहेंगी । फिर भी उन्हें कुछ तो बताना ही पड़ेगा ।

घंटों मैं सोचता रहता कि बावजूद संघर्षों के सुषमा मेरे अन्दर रोज-ब-रोज नये फूल क्यों खिलाया करती है ? मैं सुषमा को अपना समझता हूँ ? प्रभावित हूँ ? पर, वह क्या समझती है मुझे ? कहीं घृणा तो नहीं करती ? मुझे सन्देह तो नहीं है ? विरोधी भावनाओं के होते हुए भी उन जैसा सरल-सुगम प्रेरणा-स्रोत भी नहीं था । अचानक निष्क्रिय-निस्पन्द क्यों हो जाता हूँ ? भारीपन क्यों महसूस करने लगता हूँ ?

नौकरी कर लेने पर मैंने सुषमा आदि की कोई खबर नहीं ली । सोचा सबने था कि मैं मेरिटलिस्ट में आया हूँ ? छात्रवृत्ति पाने का अधिकारी हूँ । किसी-न-किसी तरह आगे पढ़ूँगा । उस दिन वह मामी ने कह दिया था कि यदि कभी किसी वस्तु की मुझे जरूरत पड़े, तो बेहिचक मैं उनसे कहूँ । आज मेरी दिली ख्वाहिश है इंटर कॉलेज से पास करने की । कौन साल भर मुझे फीस-कॉपी आदि के रुपये देगा ? ये सब तो मुँह देखी बात है ! इतने दिन सुषमा के घर गया नहीं, शायद इसकी चिन्ता हो मामी को । मेरे दृष्टिकोण से तो सुषमा को चिन्ता होनी चाहिए ?···अस्तु ।

कहीं मैं मामी की स्पष्टोक्ति से तो नहीं सहम गया । चलाया तो था ही मैंने रिश्ता ! विमल को भी अपने घर में टिकाया है । सत्य को स्वीकारने मुझे सकोच-लज्जा का अनुभव क्यों ? मेरे न जाने से तो उन्हें यही लग रहा होगा कि कदाचित् यही बात है ! मेरे आत्म-सम्मान को चोट लगी है ।

ऑफिस जाने पर विदित हुआ कि अचानक जरूरी काम आ जाने से मैनेजर साहब बाहर चले गये हैं । संयोग से छुट्टी मिल गयी थी । मैं बिना सोचे-विचारे मामी से मिलने चल पड़ा । बैंक तक पहुँचा, तो

के लिए द्विविधा में पड़ गया। सोचता जा रहा था कि सुषमा से मुलाकात हो पाती है या नहीं। जब-जब सुषमा को मैंने पराया समझा, तब-तब वह मुझे उतनी ही आत्मीय और सहृदय प्रतीत हुई।

आज मैं बेखटके ऊपर चढ़ता जा रहा था। पीछे किसी की आहट सुनकर मैं कुछ देर के लिए स्तब्ध रह गया। रास्ते में सोच रहा था कि सुषमा शायद ही मिले। सीढ़ी पर सुषमा दिखाई पड़ी, तो मुझे चक्कर आने लगा। यह झेंपा-झेंपी कहाँ से आ गयी मुझमें। महिला तो हूँ नहीं! कोरा विद्यार्थी भी नहीं रह गया? नौकरी करता हूँ? गृहस्थी का दायित्व है! सैकड़ों किस्म के आदमियों से रोज मिलता-जुलता हूँ! सुषमा कोई हौवा तो है नहीं। अपरिचित भी नहीं! फिर क्यों नहीं खुलकर मिलता-बोलता उससे।

ठीक दो मास बाद मैं भाभी से मिलने आया था। सुषमा देखने में काफी दुर्बल लग रही थी।

सामना होते ही वह हकबका-सी गयी। अभिवादनार्थ न तो उसके हाथ ऊपर उठे, न ही मेरे। विकट दायरा था दोनों के बीच। इस वक्त काफी खोई-खोई-सी दीख रही थी सुषमा! इशारे से अन्दर ले गयी। किंकर्त्तव्य-विमूढ़ मैं उसके पीछे हो लिया। पहले से कमरे में कोई और नहीं था। मैं चुपचाप कमरे में जा बैठा।

बैठे-बैठे कोई दस मिनट बीत गए और मेरे पास कोई भी नहीं आया, तो झुंझलाहट-सी आने लगी मुझे। शायद भाभी घर में नहीं हैं! अकेले सुषमा तो बैठेगी नहीं, सोचने लगा कि निष्प्रयोजन अकेले बैठना कहाँ तक संगत है। क्या कह के इस समय सुषमा से विदा लूं?

अप्रत्याशित सुषमा मेरे पार्श्व आ बैठी, तो मेरे विस्मय की सीमा नहीं रही। अच्छा हुआ कि मौन-भंग उसी ने किया—

—कब आये आप दूर से वापस?

—कल!…

—कितने दिन, प्रतिमास टूर पर रहते हैं!

—बीस-बाइस दिन तो लग ही जाते हैं।

—परसों मामी जी आपके घर गयी थी। वहीं मालूम हुआ कि आपने स्टडी ब्रेक कर दी है।

सुषमा एक-एक बात काफी नपे-तुले शब्दों में कर रही थी।

—स्कालरशिप भी मारी जायेगी।

—हूँ!

—अचानक आइडिया ड्राप क्यों कर दिया!

—आइडिया ड्राप नहीं कर दिया! बल्कि इस वर्ष विचार छोड़ दिया है।

—लेकिन स्टडी कन्टीन्यू न रखने में स्कालरशिप जो मारी जायगी।

—क्या किया जाय? परिस्थिति सबको लाचार कर देती है।

—और कल तक की परिस्थिति क्या ठीक थी?

—ठीक कभी नहीं थी। सच पूछो तो इससे भी भयावह थी।

—अब तो चार साल और झेलना था आपको संघर्ष!

बात इस ढंग से कही गयी थी, कि मैं गौर से उसका मुँह निहारता रहा। मुझे, अब अच्छा नहीं लग रहा था, कि सुषमा केवल स्टडी के सम्बन्ध में ही सवाल-जवाब करे। वह इस स्थिति में नहीं थी कि मेरी असलियत भाँप पाती!

—मामी कहीं बाहर गयी हैं क्या?

—हाँ!

—बहुत समय लिया मैंने! अच्छा...अब चलता हूँ।...

दोपहर के एक बजे थे। एजेन्ट साहब खाना शायद इसी वक्त खाते थे। चप्पल पहन रहा था कि देखा, पैन्ट-बुशर्ट पहने एजेन्ट साहब चले आ रहे हैं।

हड़बड़ाहट में मेरे दोनों हाथ जुड़ गए।

—क्यूँ? कैसे आये।

—जी ! भाभी से मिलने आया था ।

—अच्छा !···

उन्होंने कुछ ऐसे कहा कि मेरी जुबान का थूक कंठ में अटकने लगा । अजनबियों-जैसी बात कर रहे थे वे ।

आज ही नहीं ! जब-जब दुर्भाग्यवश उनसे भेंट हुई, उन्होंने हमेशा अपरिचितों जैसा व्यवहार किया । अक्सर, उनकी रुखाई एवं कटूक्तियों से मुझे ठेस पहुँची है । पहले चाहे जो सोचता रहा होऊँ । अब मात्र यह सोच लेता हूँ कि उनकी प्रकृति ही ऐसी है, तो चिन्ता-दुःख की क्या बात है ?

उनकी दो-एक बात ही मेरे होंठ बंद कर देने के लिए काफी थीं । मेरे उठते ही वे बोले—

—अरे, चल दिये ? भाभी से नहीं मिलोगे क्या ? तुम तो उनसे मिलने आये थे ।

—मैं यहाँ काफी देर से हूँ ।

—कै बजे आये थे ?

—आधा घंटा जरूर हो गया होगा ।

अचानक उन्होंने मुझसे बातें करना बंद कर दिया । सुषमा से कहने लगे—

—तो तुम भी आज कालेज नहीं गयी थी सुषमा ?

—गयी थी पिताजी !

—क्लास की एक लड़की कल रात दिवंगत हो गयी ! शोक प्रस्ताव के बाद कालेज तत्काल बंद कर दिया गया ।

—चलो, अच्छा ही रहा । तुम न आती, तो इन्हें निराश ही लौटना पड़ता ।

भाभी किसी कार्य से पड़ोस में गयी थीं । मैं उद्विग्न हो, वहाँ से उठा, तो साश्चर्य देखा कि भाभी सामने खड़ी हैं ।

सच पूछो, तो उस घर में एक भाभी ही ऐसी थीं, जो ऊँच-नीच नहीं मानती थीं। उस घर में उनके अतिरिक्त कोई और सहिष्णु और सहृदय नहीं था।

मुझे दूर से देखकर ही कहने लगीं—

—कहो, अच्छे तो हो?

—जी हाँ!

—नौकरी करने लगे?...

—जी! 'यातरक्त' का टूरिंग एजेन्ट हूँ।

—चलो, ठीक किया। पर, नौकरी ही करनी है, तो सरकारी ढूंढो।

—जी हाँ! अभी तो यही हूँ। अच्छी नौकरी मिलते ही छोड़ दूंगा।

एजेन्ट साहब जा चुके थे। सुषमा भी उनके संग चली गयी थी। अभी मुश्किल से दस मिनट बीते थे कि पता चला कि एजेन्ट साहब भोजन से निवृत्त हो गए। तौलिये से हाथ पोंछते हुए वे पुनः आ गए। बोले—

—You are lucky enough! भाभी भी मिल गयी।

—जी! सौभाग्य ही मानता हूँ इसे मैं अपना।

भाभी ने प्रसंग बदल न दिया होता, तो एजेन्ट साहब कदाचित् मेरे बारे में कुछ और भी कहते।

, कुछ ही क्षण बातें कर पाये थे कि सफेदपोश चपरासी परवाना लेकर हाजिर हो गया। शायद कोई आवश्यक कार्य आ गया था। एजेन्ट साहब फौरन कमरे से बाहर चले गए।

मुझे थोड़ी राहत मिली, कि चलो पिण्ड छूटा। उनकी उपस्थिति मुझे अत्यन्त अखर रही थी। भाभी से थोड़ी देर बातें कर चुका, तो वे बोलीं—

—बैंक में नौकरी करेगा ? मैं उनसे कह दूं कि किसी जगह लगा दें।

—अंधे को आँख मिले ? वह भी पूछ-पूछ के !

—अब तो खूब बोलने लगा है—भाभी ने कहा।

सुषमा पुनः लौट आयी। मानों, उसने पहले भी कुछ सुना हो।

—परिश्रम बहुत करना पड़ता है बैंक के काम में। आइये समय पर। लेकिन यह मत सोचिए कि छुट्टी कब मिलेगी।

कहना मैं भी कुछ चाहता था किन्तु हठात् चुप रह गया। शायद भाभी से कुछ देर और बातें होतीं। सुषमा के बीच में ही टपक पड़ने के कारण मुझे स्वतः प्रसंग बदल देना पड़ा। मुझे आये दो घंटे बीत गए थे। अपना कोई खास काम तो था नहीं। चाहता तो और भी बैठ सकता था। वातावरण अनुपयुक्त जानकर मैं उठ खड़ा हुआ। चलते-चलते भाभी ने पूछा—

—अभी तो रहोगे न दो-चार दिन !

—जी !...फिर भी अपने से मैं कुछ कह नहीं सकता। अगर कल ही मैनेजर साहब दौरे का प्रोग्राम बना डालें, तो मैं टाल किसी हालत में नहीं सकता।

—नौकरी खास अच्छी नहीं है तुम्हारी ! मुश्किल से पांच-सात दिन रुक पाते हो।

—ऐसा तो नहीं। कभी-कभी पन्द्रह-बीस दिन भी लग जाते हैं। हाँ निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता ! वाक् दायरा बढ़ता जा रहा था। अन्ततोगत्वा हाथ जोड़कर नीचे चला गया।

कमरे से बाहर निकलते ही पुनः सुषमा से टकराहट हो गयी। काफी दिनों बाद सुषमा से इस रूप में मुलाकात हुई थी। मुझे संकोच लगा। फलतः मैं जिस स्थिति में था, उसी तरह निस्पंद खड़ा रहा। नीचे-ऊपर जाने के लिए एक आदमी का हट जाना आवश्यक था।

अधिक देर आमने-सामने निष्प्रयोजन खड़े रहना भी असगत था। उसे स्पर्श करता हुआ मैं नीचे उतर गया!

सुषमा ने केवल इतना पूछा—

—जा रहे हैं?

—हाँ।

—क्या आज ही बाहर जाने का इरादा है!

—नहीं!

अनन्तर दोनों के होंठ चिपक गये।

—o—

माँ के लिए दो जोड़ा धोती, कुछ अन्य घरेलू सामान क्रय कर मैं घर लौटा। विमल स्नानादि से निवृत्त हो चुका था। माँ परांवठे बना रही थीं। कुछ देर पूर्व वे कदाचित् यही कह रही थीं कि मैं किधर गया ? जूता उतारते वक्त मेरे काम में भनक पड़ी—

—आ जाता, तो गरम-गरम खा लेता ! परदेश की नौकरी में तो क्या खाता-पीता होगा ? सेहत कितनी विगड़ गयी है।···

उनके मुँह से सेहत की वात सुनकर मुझे हँसी आ गयी !···सेहत माँ की गिर रही है या मेरी ! मेरा कंठ अवरुद्ध-सा हो गया।

मुझे सामने देखकर माँ की वाछें खिल उठीं। माँ के कहने से पूर्व 'तुम्हारी उम्र लम्बी हो भैया' कहकर विमल जाँघिया पहिन सामने आ गया। संक्षेप में, पहले, कारखाने के सम्बन्ध में विमल ने कुछ कहा। अनन्तर मैं हाथ-मुँह धोकर भोजनार्थ वैठ गया।

दूर पर रहने से मुझे गर्म-ताजा खाना वहुत-कम नसीव होता था। होटल का खाना खाते-खाते मेरी तवीयत भर गयी थी। स्वास्थ्य की दृष्टि से वे कितने हानिकर होते हैं, इसका अहसास मुझे माँ के हाथ से वने भोजन को ग्रहण करने पर हो रहा था। कितनी सावधानी से एक-एक लोई वे तोड़कर वना रही थीं ! मैं खाता जा रहा था और माँ दूर सम्बन्धी वहुत से प्रश्न करती जा रही थीं।

खा-पीकर मैं ऊपर चला गया। विमल पहले से ही वहाँ वैठा था। वह मेरा विस्तर लगाने लगा, मुझे तो अपने ऊपर अत्यधिक झुँझलाहट आने लगी। उसे मैंने टोक दिया। यह मैं कभी वर्दाश्त नहीं कर सकता कि विमल मुझे ऊँचा समझे और स्वयं को नीचा। जब वह

अलग रहता था, हमेशा हँस-बोलकर बातें करता था। इन दिनों ऐसा लगता था, गोया वह मेरे एहसानों से दब गया हो। अकारण किसी बात पर मैं बोल पड़ता, तो एकटक विमल मुझे देखने लगता था। आज भी उसने जब मेरे हाथ से दरी-तकिया छीन लिया, तो मैं सोचकर उसे देखता रह गया।

काफी देर तक विमल गुमसुम मेरी बगल में बैठा रहा। मुझे लगा कि शायद वह मुझसे कुछ और कहना चाहता है। कुछ-न-कुछ गड़बड़ी हुई अवश्य है। शंका मिटाने के लिए मैंने पूछ ही लिया—

—कारखाने में सब ठीक तो है।

—ठीक ही है।

—लेकिन तुम्हारा चेहरा तो कुछ और कह रहा है।

कंठ तक कोई बात आयी। मुखाकृति देखकर वह शान्त हो गया।

कुछ देर मैं हतप्रभ बन उसकी तरफ देखता रहा। निश्चय फिर भी नहीं कर पाया कि विमल से आगे कुछ और पूछा जाय। प्रसंग बदलना जरूरी था। फलतः मैंने जान-बूझकर दूर सम्बन्धी बातें छेड़ दीं। जाहिर था कि वह मेरी बात दिलचस्पी से नहीं सुन रहा था। अनिष्ट की आशंका मुझे पहले से ही थी। मैनेजर साहब का रुख जरूर बदल गया है। निश्चय था कि एक-आध बार यदि मैं उससे और कहता-पूछता, तो वह मुझे सब कुछ निस्संकोच बता देता।

माँ ऊपर आयीं, तो कुछ देर हम लोगों के पास बैठ गयीं। माँ को कितना काम करना पड़ता है। यह सोच-सोच कर अक्सर मेरी नींद गायब हो जाती थी। आज जबकि वे मेरे सिरहाने बैठी थीं, मुझे अकस्मात् स्व० बाबूजी की भी याद आने लगी। दो साल पूर्व जो दशा बाबूजी की था, ठीक वही हालत माँ की हो रही थी। बाबू जी जब बीमार थे, उस वक्त मैं केवल विद्यार्थी था। आज जबकि मैं खुद कमा रहा हूँ, तो माँ क्यों घुलती जा रही है। कितनी मैली धोती पहने रहती हैं। कितनी ही बार टोका। स्वयं उनकी धोती में साबुन लगाया। किन्तु बब ध्यान

गया—इस तरफ उनका। जिस दिन मुझे यह विदित हुआ कि उन्हें मेरी उक्त बातों से दुःख होता है, तो मैंने संकल्प कर लिया कि आइन्दा उनसे मैं एक शब्द भी नहीं कहूँगा। नौकरी करता हूँ, तब भी दो जून रोटी-दाल मिलती है। रिक्शा चलाता था, तब भी रूखा-सूखा खाकर किसी तरह पेट भरता था। आज ७५) रुपया मासिक मिलते हैं, तब यह स्थिति है! माँ का यह आग्रह अलग है कि मैं एक लड़की घर में और ले आऊँ! दिन भर में बीसों औरतें मेरे विवाह के लिए आती हैं। माँ किन-किन को धता करे? आखिर, वे सब सोचती क्या होंगी? पास ठीकरे भी नहीं और घमण्ड इतना! उन अवगत औरतों की तरफ से, जब माँ खुद वकालत करने लगती थीं, तो मैं अनमना-सा बैठा रह जाता था। टालने या बहाना बताने के अलावा तो कुछ था नहीं मेरे पास! माँ क्या नहीं सोचती होंगी कि मैं बेकहा होता जा रहा हूँ उन्हें चकमा दे रहा हूँ?···

रात सोने की कोशिश करता, तो एकबारगी यही बात मुझे बेधने लगती कि माँ को निश्चयात्मक जवाब दूँ, तो क्या दूँ! यह कब तक कहता रहूँ कि अभी मेरा विवाह करने का विचार नहीं है। माँ केवल इसीलिए तो शादी कराना चाहतीं हैं कि मेरी उम्र हो गयी है? उन्हें जब जिन्दगी का ही भरोसा नहीं है? तो जीते-जी वे मुझे अकेला कैसे छोड़ दें। और वस्तुस्थिति है भी यह! किसी क्षण भी उनकी जुबान ऐंठ सकती है।

सवेरा हो गया था। विमल बिस्तर तहा रहा था। मेरी तरफ मुखातिब होकर जब वह नीचे चला गया, तो अपने ऊपर कुड़मुड़ाता झुंझलाता मैं भी आँख मलता हुआ कमरे से बाहर हो गया। माँ कब उठकर रसोई आदि की तैयारी कर रही थीं, इसका ज्ञान किसी को भी नहीं हो पाया था।

दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर जब मैं तखत पर बैठा, तो रह-रह

कर जो खुमारी हिलोरें मार रही थी, वह अब असरहीन हो चुकी थी ! इस वक्त मुझे किंचित् चिन्ता नहीं थी कि माँ ने मुझसे विवाह के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण माँगा है ? ईश्वर से विनती कर रहा था कि मैनेजर साहब आज ही वापिस आकर मुझे टूर पर भेज दें, तो अच्छा हो ! घर पर रहूँगा, तो माँ अवश्य इधर-उधर का तर्क करेंगी ! घर पर रहूँगा, तो माँ अवश्यमेव अपनी रामायण शुरू कर देंगी। वस्तुस्थिति जबकि यह है कि मैं अभी विवाह के चक्कर में नहीं पड़ना चाहता। जल्दी भी क्या है ? माँ मौत की विभीषिका से घबड़ाकर ही तो मेरा विवाह शीघ्रातिशीघ्र कर देना चाहती हैं। उन्हें सहारे की जरूरत है ! यह भी सत्य है। लेकिन केवल उनके सहारे को पुष्ट कर मैं कहाँ जाऊँ ? आज, आर्थिक संकटों के बावजूद मैं जो कुछ हूँ, महज इसलिए कि मुझे जीवन में क्रान्ति लानी है। दबाव से, यदि मेरा प्रेरणा-स्रोत सूख जायगा तो मुझमें और एक साधारण राहगीर में कोई अन्तर नहीं रह जायगा। मुझ-जैसे श्रेणी के लिए संघर्ष, मुश्किलें झेलकर ही अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं। क्षण-भर के लिए भी हार स्वीकारने पर यावज्जीवन पछताना पड़ेगा। माँ तो करती ही रहेगी अपने मन की ! कौन माँ अपने जवान बेटे को सपत्नीक देखना नहीं चाहेगी ? कौन बूढ़ी महिला नहीं चाहती कि वह जीते-जी पोते को गोद में न खिलाये ! माँ भी तो उसी हाड़-मांस से बनी हैं ? अचानक, इसलिए तो उनके अन्दर से स्त्रियोचित भावना दूर नहीं हो सकती कि हम गरीब हैं। खाने, सोने और कमाने के अलावा और कोई स्वप्न ही नहीं है ? जिसके पाँच-छः पुत्र होते हैं, उसके यहाँ अगर एक-दो लड़कों का भी विवाह हो जाता है, तो परितृप्ति मिल जाती है। किन्तु माँ के लिए तो मेरे अतिरिक्त और कोई था ही नहीं। जी रही थी तो मेरे लिए और मरना नहीं चाहती थी तो मेरे लिए !

विमल खा-पीकर कारखाने के लिए प्रस्थान कर गया। मैंने उ साथ चलने के लिए रोक लिया। उसे मेरे कपड़े-लत्ते देखकर शायद भे

लगती थी। क्यों होता जा रहा है वह ऐसा ? लाख सिर मारने पर भी यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था।

रास्ते में काफी देर गुमसुम रहने के बाद मैंने मौन का तार तोड़ दिया। कारखाने जा रहा था। अतएव वहीं की बात शुरू कर दी।

—रात, तुमने ठीक-ठीक मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया था ? जरूर इन दिनों कारखाने में तुम्हारा मन नहीं लग रहा है। ओझा बाबू व्यवहार तो अच्छा करते हैं।

—इधर कुछ दिनों से उनका पारा काफी चढ़ा रहता है। शुरू-शुरू में वे बहुत कायदे से पेश आते थे। आजकल मामूली-सी बात पर बेमतलब व्यंग्य-बौछार आरम्भ कर देते हैं। कभी-कभी तो ऐसी इच्छा होती है कि नौकरी से इस्तीफा दे दूं। स्वतन्त्र पेशा—चाहे भी जैसा हो ? कम-से-कम मानापमान से तो बचाता है।

—स्पष्ट है कि ओझा बाबू ने जानबूझकर गलती की है !

—ये सब आदमी को आदमी क्यों नहीं समझते भैया ? गरीबी-अमीरी की दीवाल आखिर कब तक कायम रहेगी ?···

—मिटेगी !···मिटेगी क्यों नहीं विमल ! जन्मे सब बराबर हैं। हममें से एक का अपमान सारे श्रमिक वर्ग का अपमान है। इसका खुलकर विरोध किया जाना चाहिए ! अत्याचार बर्दाश्त करने से आदमी बुजदिल हो जाता है। हर ताकत से लोहा लेने के लिए ताकत की जरूरत पड़ती है।

—लेकिन ताकत से आपका आशय क्या है ?

—संघ ! संगठन !! एकता !!! दमन को कुचलने की ताकत !····

—इन सबके होने पर भी तो एक ताक़त कोसों दूर है ?

—पूंजी से, तुम्हारा मतलब है ? बोलो ? चुप क्यों हो गए ?

—हां ! उसी से। जिसके अभाव में हम अपमान, तिरस्कार और पता नहीं क्या-क्या सहते हैं ? कितने ही आदी हो गए है—यह सब सहते—बर्दाश्त करते !

—गलत कह रहे हो विमल ! पुरानी परम्पराओं को कुचलने के लिए पहले इन्हें कुर्बानी देनी पड़ेगी ! पूंजी भौतिक रूप में चाहे जो अर्थ रखे ! वास्तव मे पूंजी-जैसी निकृष्ट चीज दुनिया मे नहीं है।

बात करते पता नहीं कब कारखाना समीप आ गया। विमल फुर्ती से अन्दर चला गया। मैं स्वाभाविक कदम रखता हुआ ओझा बाबू के कमरे में चला गया।

एकाउन्टेंट साहब से मालूम हुआ कि मैनेजर साहब अभी-अभी किसी मित्र के साथ बाहर गए हैं। मैं सोच मे पड गया कि कहीं दो-तीन घंटे यों ही बैठना पड़ा, तो मुझे अखर जायगा। मेज पर रखे इधर-उधर के कागज मैं दिल बहलाव के लिए उलटने-पलटने लगा। अभी मुश्किल मे दस मिनट बीते थे कि सामने मैनेजर साहब की कार आ खड़ी हुई ! मैं अभिवादनार्थ खड़ा ही हुआ था कि उन्होंने मुस्कराकर मुझसे बैठ जाने को कहा।

कुर्सी पर बैठते ही उन्होंने पेपरवेट से दबे छोटे-मोटे कागज देखने शुरू कर दिये। मुझसे पूछना ही भूल गए कि तुम यहाँ कितनी देर से बेकार बैठो हो ?

अकस्मात् रास्ते मे विमल से जैसी बातें हुई थीं, उसकी स्मृति ताजा हो गयी!···ये कारखाने का वातावरण क्यों विषाक्त होता जा रहा है ? मुझे काम करते इतने दिन हो गए ! किसी ने, सामने एक शब्द नहीं कहा।

कितने नीतिज्ञ होते हैं बड़े आदमी ? किससे कैसी बात करनी चाहिए ? यह इन्हें अच्छी तरह मालूम है। किसी को अपमानित करना, अपशब्द कहना अथवा मार-पीट देना साधारण बात है। इनके दुर्व्यवहार से समाज पर कैसा दूषित प्रभाव पड़ता है ? उठती पीढ़ी के अहम् को नीचे गिराने में इनका जितना हाथ रहता है, उसे किसी तरह यदि समाप्त कर दिया जाय, तो आज आदमी का विवेक-स्तर बदल जाय।

पेटर ईदुल बदगी दाग कर कमरे में आया, तो मुझे लगा कि मै—

समय और जाया होने वाला है। आवश्यक कार्य से निवृत्त हुए, तो सर्वप्रथम उन्होंने ईदुल को ही अपनी तरफ खींचा !

—बोर्ड तैयार हो गए।

—जी नहीं।

—यह क्या कह रहे हो ? रात को वायदा किया था न कि सुबह ५ बजे बोर्ड पहुँचा दोगे। आये किसलिए हो यहाँ ? आदमी हो कि पैजामा !

अपने लिए 'आदमी—पैजामा' का विशेषण सुनकर ईदुल कुछ-देर हतप्रभ-सा हो गया ! शायद वह गुस्सा पी गया था।

—क्यों नहीं बना ! मर्द की जबान पर विश्वास किया जाय कि नहीं।

—आप कुछ भी कह लें। पैसा न हो, तो कैसे बोर्ड तैयार करूँ ? मैंने Advance के लिए···

—एडवान्स ! किस बात का ! कल १०५) का चेक दिया था ! रात भर में खतम हो गया। अच्छी रही ! जिसकी बदौलत चार पैसे पैदा करते हो, उसी से ऐसी हरकत करते तुम्हें शरम नहीं आती ! तुम बोर्ड नहीं बनाओगे, तो क्या काम रुक जायगा ? फौरन चले जाओ ! कोई जरूरत नहीं है अब हमें तुम्हारी !····

—जाते-जाते ईदुल ने क्या कहा ? मैंने जान-बूझकर नहीं सुना। मैनेजर (ओझा बाबू) का बिगड़ा-उतरा मूड देखकर मैं भी उसी क्षण उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर कमरे से बाहर निकल गया। उन्होंने एक शब्द नहीं कहा कि मैं किसलिए आया था और बिना कुछ कहे-सुने क्यों जा रहा हूँ।

घिसिट-घुसुट कर सब काम चल रहे थे। मैं दौरे पर निकल जाता था। विमल कारखाने चला जाता और माँ कभी विमल के लिए और कभी दोनों के लिए रोटियाँ बना लेती थीं। पन्द्रह-बीस दिन बाद जब मैं घर लौटता, तो वे भूलकर भी विवाह की चर्चा मुझसे न करतीं। उनका स्थान, अब विमल ने जरूर ले लिया था। बात-ही-बात में एक दिन उसी से विदित हुआ कि माँ मेरी मौन-स्थिति से काफी खिन्न रहने लगी हैं। उनकी सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा अन्तर्मुखी होती जा रही है। आशा का ह्रास होने लगता है, तो बूढ़ा आदमी मौन से प्रायः कम घबड़ाता है।

माँ के ढलते स्वास्थ्य से मैं जितना ही चिन्तित रहता; वे खुद उतना ही उदासीन! मैं, जब जो कहता, उसकी अत्यन्त सीमित उत्तर-प्रत्युत्तर देती थीं वे। कमरे के किवाड़ बंद कर तब मैं घंटों फूट-फूटकर रोता। माँ की खातिर सब-कुछ करने को उद्यत होता! आँसू सूखने-सूखते पुनः मेरे विचार बिखरने लगते। स्थिरता नाम की चीज जैसे रह ही नहीं गयी थी मुझमें।

बातें कम करनी पड़ें, फलतः माँ ने पूजा-पाठ में अधिक समय देना शुरू कर दिया था। अचानक यह परिवर्तन कैसे आ गया? माँ मुझसे कुछ कहना क्यों नहीं चाहतीं? यह सोच-सोचकर मेरा सिर तो दर्द करने लगता था। उस सुषमा के लिए माँ को नाखुश रखूँ? जिसका यथार्थ तक मुझे नहीं विदित। आखिर क्यों? किसलिए?...

कारखाने की नौकरी से विमल बहुत दिनों से ऊबा बैठा था। वह कई बार उस सम्बन्ध में मुझसे टीका-टिप्पणी कर चुका था। उसकी इच्छा नहीं थी। इसलिए उसे विवश नहीं करना चाहता था मैं! उसके-

नौकरी छोड़ने का जितना दुःख मुझे नहीं था, उससे अधिक रिक्शा चलाने जैसा घृणित-पेशा अख्तियार करने का ! विमल मेरे देखते-देखते अस्थि-पंजर-सा दीखने लगे ! यह मुझे कतई वर्दाश्त नहीं था ! प्रसंगवश जब मैंने उसे नौकरी से त्यागपत्र देने की अनुमति दे दी, तो उसका चेहरा विनोद से खिल उठा ! वह इतना खुश हुआ, गोया, किसी कैदी को लम्बी सजा के वाद जेल से रिहा करने की सूचना दी जा रही हो ! सबके सामने एक दिन विमल ने जब अपना त्याग-पत्र मैनेजर साहब को दिया, तो आते-जाते सब उसे टकटकी बाँधकर देखने लगे ! किसी ने यह भी नहीं पूछा कि क्या उसे दूसरी जगह नौकरी मिल गयी है ? अथवा शहर छोड़ कर वह अन्यत्र तो नहीं जा रहा है ?

कारखाने से वापिस लौटकर विमल ने अपने इस्तीफे की चर्चा माँ से की, एकाएक उनका चेहरा काला पड़ गया ! वे पूछ ही नहीं सकीं कुछ। विना वोले, जब माँ रसोईघर में चली गयीं, तो विमल भी उद्विग्न-मन ऊपर कमरे में चला गया। ऐसी वात नहीं कि उसे किंचित् कष्ट न हुआ हो ! नौकरी अच्छी हो या बुरी ! छोड़ने-छूट जाने से तकलीफ-चिन्ता प्रत्येक को होती है !

घर आये, अभी दो ही घंटे हुए थे उसे कि कमीज पहनकर पुनः वाहर चला गया। माँ उसे वेकार न समझें, इसलिए वह उसी दिन काम ढूंढ़ लेना चाहता था। रिक्शा वह वखुशी चला लेता था। वही एक ऐसा बचा-खुचा काम था, जिसे वह सरलता से चालू कर सकता था। रिक्शा-मालिक की दुकान की तरफ वह वढ़ा, तो अचानक उसे अमर के दोहराये शब्द याद आ गए ! काफी सोचने-समझाने के वाद भी जब उसकी समझ में कुछ नहीं आया, तो रिक्शों की दुकान के सामने खड़ा ही हो गया ! लल्लू मास्टर ने उसे देखकर पहले तो थोड़ा व्यंग्य कसा ! वाद में कायदे की वातें कीं ! रिक्शा देने में तो उसे क्या आपत्ति हो सकती थी ? लल्लू मास्टर के लिए तो विमल का पुनः रिक्शा खींचना लाभप्रद ही था ! ऐक्सीडेन्ट में जो रिक्शा चकनाचूर हो गया था, उसकी क्षतिपूर्ति क

सुबह-दोपहर की तरह रात भी बीत गयी ! अमर ने, विमल से जो कुछ पूछने के लिए निश्चित किया था, वह आप-से-आप भूलता जा रहा था। उसे लग रहा था कि इस वक्त यदि वह कुछ पूछता है, तो शायद, विमल किसी भी बात का संगत उत्तर न दे सके।

विमल दूसरे दिन, तड़के उठ बैठा, तो अमर को कुछ-कुछ संदेह होने लगा ! कहीं वह पुनः रिक्शा चलाने तो नहीं जा रहा है ? फिर यदि एक्सीडेन्ट हो गया तो ? रिक्शा तो कायदे से उसे अभी छूना भी नहीं चाहिए ? घाव पुरे भी तो नहीं हैं ठीक से ! क्यों वह खुद मौत के मुँह में जा रहा है ! नौकरी न मिलने तक मैं जो उसे खिला सकता हूँ ? क्या उसे एक दिन बेकार बैठना मंजूर नहीं ! नहीं-नहीं ! ऐसा कभी नहीं होने पायेगा। यदि मैं विमल को अपना समझता हूँ तो जान-बूझकर उसे मौत के मुँह में नहीं ढकेलूंगा ! मुझे ही क्यों ? प्रत्येक व्यक्ति जो मुझसे परिचित है—विमल को रिक्शा चलाते देखकर फब्तियाँ कसेगा ! सब कुछ भले मिल जाय, मैं अपने लक्ष्य से एक इन्च पीछे नहीं हटूंगा।

तड़के, विमल घर से जाने लगा, तो मैंने उसे रोक लिया। अच्छा तो नहीं लगा उसे ! किन्तु मेरे बोलते ही एक कदम आगे नहीं बढ़ा वह !

—इस समय कहाँ जा रहे हो ?

—काम पर !

—रिक्शा चलाने ?

—हाँ ?

—आखिर, इतनी जल्दी भी क्या है ? रिक्शे के अलावा क्या कोई दूसरा काम नहीं किया जा सकता ? तुम्हीं सोचो ! कितना रिस्की पेशा है यह ! इतनी जल्दी भूल गए-एक्सीडेन्ट वाली बात ! फैसला कर सकने में तुम उतने ही स्वतंत्र हो, जितना कि मैं। फिर भी, तुमसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि रिक्शा खींचने का विचार बिलकुल छोड़ दो। दूसरा कोई भी काम करो ! मैं तुमसे एक शब्द नहीं कहूँगा !

विमल काफी देर, बिना बोले मुझे निहारता रहा। वह कब क्या कहेगा ? मेरी बात मानेगा भी या नहीं ? भीतर-ही-भीतर एक सिहरन-सी होने लगी ! वह भी, खड़े-खड़े जब थक गया, तो धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ बगल वाले कमरे में चला गया। मैं निश्चय नहीं कर पा रहा था कि इस वक्त विमल को अकेले ही छोड़ दिया जाय ? या पास बैठकर कुछ पूछा-कहा जाय।

दोनों को अलग-अलग गुमसुम बैठा देख माँ, आंखें फाड़ती मेरे सामने खड़ी हो गयी। आज, ये लोग एक-दूसरे से बोल क्यों नहीं रहे हैं ? अचानक मनमुटाव कैसे हो गया ? मन-की, मन में ही रखे वह जिधर से आयी थीं, उसी रास्ते वापस चली गयी। विमल कहीं मुझसे तो रुष्ट नहीं हो गया है ? इतना ही तो कहा था कि उसने नौकरी से इस्तीफा दे दिया है। उसकी कही बात का प्रतिवाद तो किया नहीं था मैंने। मुझसे वह रूठा, तो किस बात पर ! जरूर कोई दूसरी बात है।



सुबह-दोपहर की तरह रात भी बीत गयी ! अमर ने, विमल से जो कुछ पूछने के लिए निश्चित किया था, वह आप-से-आप भूलता जा रहा था। उसे लग रहा था कि इस वक्त यदि वह कुछ पूछता है, तो शायद, विमल किसी भी बात का संगत उत्तर न दे सके।

विमल दूसरे दिन, तड़के उठ बैठा, तो अमर को कुछ-कुछ संदेह होने लगा ! कहीं वह पुनः रिक्शा चलाने तो नहीं जा रहा है ? फिर यदि एक्सीडेन्ट हो गया तो ? रिक्शा तो कायदे से उसे अभी छूना भी नहीं चाहिए ? घाव पुरे भी तो नहीं हैं ठीक से ! क्यों वह खुद मौत के मुँह में जा रहा है ! नौकरी न मिलने तक म जो उसे खिला सकता हूँ ? क्या उसे एक दिन बेकार बैठना मंजूर नहीं ! नहीं-नहीं ! ऐसा कभी नहीं होने पायेगा। यदि मैं विमल को अपना समझता हूँ तो जान-बूझकर उसे मौत के मुँह में नहीं ढकेलूंगा ! मुझे ही क्यों ? प्रत्येक व्यक्ति जो मुझसे परिचित है—विमल को रिक्शा चलाते देखकर फब्तियाँ कसेगा ! सब कुछ भले मिल जाय, मैं अपने लक्ष्य से एक इन्च पीछे नहीं हटूंगा।

तड़के, विमल घर से जाने लगा, तो मैंने उसे रोक लिया। अच्छा तो नहीं लगा उसे ! किन्तु मेरे बोलते ही एक कदम आगे नहीं बढ़ा वह !

—इस समय कहाँ जा रहे हो ?

—काम पर !

—रिक्शा चलाने ?

—हाँ ?

—आखिर, इतनी जल्दी भी क्या है ? रिक्शे के अलावा क्या कोई दूसरा काम नहीं किया जा सकता ? तुम्हीं सोचो ! कितना रिस्की पेशा है यह ! इतनी जल्दी भूल गए-एक्सीडेन्ट वाली बात ! फैसला कर सकने में तुम उतने ही स्वतंत्र हो, जितना कि मैं। फिर भी, तुमसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि रिक्शा खींचने का विचार बिलकुल छोड़ दो। दूसरा कोई भी काम करो ! मैं तुमसे एक शब्द नहीं कहूँगा !

विमल काफी देर, बिना बोले मुझे निहारता रहा। वह कब क्या करेगा ? मेरी बात मानेगा भी या नहीं ? भीतर-ही-भीतर एक सिहरन-सी होने लगी ! वह भी, खड़े-खड़े जब थक गया, तो धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ बगल वाले कमरे में चला गया। मैं निश्चय नहीं कर पा रहा था कि इस वक्त विमल को अकेले ही छोड़ दिया जाय ? या पास बैठकर कुछ पूछा-कहा जाय।

दोनों को अलग-अलग गुमसुम बैठा देख माँ, आँखें फाड़ती मेरे सामने खड़ी हो गयी। आज, ये लोग एक-दूसरे से बोल क्यों नहीं रहे हैं ? अचानक मनमुटाव कैसे हो गया ? मन-की, मन में ही रखे वह जिधर से आयी थी, उसी रास्ते वापस चली गयी। विमल कहीं मुझसे तो रुष्ट नहीं हो गया है ? इतना ही तो कहा था कि उसने नौकरी से इस्तीफा दे दिया है। उसकी कहीं बात का प्रतिवाद तो किया नहीं था मैंने। मुझसे वह रूठा, तो किस बात पर ! जरूर कोई दूसरी बात है।



मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि आज से ग्यारह साल पहले जो दारुण-दृश्य देखने को मिला था, वह पुनः आँखें फाड़कर घूरने की धृष्टता करेगा। माँ मुझसे कम बोलती-चालती थीं! रसोई से छूटतीं, तो सारा समय रामायण-गीता पढ़ती रहतीं! मैं दफ्तर से कब लौटा? कोई खास बात तो नहीं हुई? सब चीजें उन्हें बेमतलब-सी मालूम होने लगी थीं। उन्हें! माँ जिस वजह से खिंची-खिंची रहने लगी थीं; उसे मैं सोच-सोच कर घुटन अनुभव कर रहा था! उनकी इच्छित-लड़की से शीघ्रातिशीघ्र शादी कर लूं या साफ-साफ बता दूं! यह मैं अच्छी तरह जानता था, कि माँ, जिस क्षण सुषमा की बाबत मेरे मुँह से कुछ सुनेगीं, तो उनकी तबीयत काफी रंजीदा हो जायगी! मरते-दम तक शायद, उन्हें यही गम रहेगा कि मैंने किस बेहियाई से खानदान की आबरू पानी में मिला दी! उनका अध्ययन-अध्यापन धार्मिक पुस्तकों तक ही सीमित था। दुनिया कितना आगे बढ़ चुकी है? कौन बात अब अनुचित नहीं है? इसे माँ ने, न तो कभी खुद देखा, न ही सुना! द्विविधा में था कि कैसे क्या करूं? यदि माँ की बात नहीं मानता, तो सबसे बड़ी प्राप्य-निधि से वंचित हो जाऊँगा? साफ-साफ बताता हूँ, तो असमय दुर्दिन को आमंत्रित करता हूँ।

लाख-बार संकल्प-विकल्प करके भी मैं माँ से एक शब्द नहीं कह सका। वे चुप रहतीं, न बोलना चाहतीं! फिर भी मैं एक-न-एक प्रसंग छोड़कर नयी-बात पूछ ही बैठता था। 'हाँ' 'ना' का जवाब वे दे जरूर देती थी, किन्तु पहले-जैसा वात्सल्य नहीं रह गया था उनमें। मैंने कोई अपराध नहीं किया था। उनकी प्रत्येक ख्वाहिश पूरी की थी। बिगाड़

केवल विवाह की बात को लेकर हुआ था। उनके आगे सुषमा का सुगमता से बलिदान-विस्मरण किया जा सकता था। सुषमा को मैं बहुत-कुछ समझता था। फिर भी माँ की माँग के आगे उसे ठुकरा देना भी बड़ी बात नहीं थी। विवाह जैसे बंधन में तो किसी तरह बँधना ही नही चाहता था। आर्थिक अभाव के साथ-ही-साथ और भी छोटी-छोटी अनेक कठिनाइयाँ थी मेरे आगे। भोजन की व्यवस्था तो किसी प्रकार हल हो ही जाती है। विवाह का आदर्श उद्देश्य यदि केवल दो जून पेट भरना और सो रहना है, तो मैं नहीं स्वीकारता। विवाहोपरान्त जिस घर में सुख की साँस लेने के लिए खिड़कियाँ न हों! मनोरंजन के हल्के-फुल्के साधन न हों! वहाँ किसी को भार बनाना किसी प्रकार भी उचित नही कहा जा सकता। हर व्यक्ति अभाव की जिन्दगी खुशी-खुशी नहीं बिता सकता। जो एक समय भोजन करके आनन्द-मोद मनाता है, वह अपने सहभागी अथवा घर के अन्य किसी सहकर्मी से वैसी ही आशा नही कर सकता। इन उलझनो के कारण यदि मैं विवाह नही कर रहा हूँ, तो बुरा क्या है? पढ़ाई-लिखाई और नौकरी के अतिरिक्त यदि मैंने अब तक के जीवन मे कोई ऐसा काम किया, जिसे सब लोग पसद नही कर सकते, वह है सुषमा को चाहना! सुषमा बाहरियो के लिए मेरी भौतिक भूख है, तो मेरे अभिमत में शक्ति-प्रेरणा और उद्भावना का प्रशान्त-स्रोत! गलत है यह कि उसे मैं शारीरिक तृप्ति प्राप्त करने के लिए चाहता हूँ। गलत मे है वह, जो यह सोचकर मेरा अपमान-तिरस्कार करे कि सुषमा की घरेलू परिस्थिति अमर की सामाजिक स्थिति के एकदम विपरीत है।

सच देखा जाय, तो जीवन का सच्चा सुख विपरीत दिशाओं मे ही है। जहाँ सीधी-सुगम पगडण्डी बनी हुई है, वहाँ मनुष्य किसी नये रास्ते की कल्पना ही कैसे कर सकता है? स्वय जब तक अच्छा-बुरा मार्ग न खोजा जायगा; किसी प्रगतिशील लक्ष्य के चिह्न नही दिखाई पड़ेंगे।

अपनी स्थिति मे माँ की जिद भी ठीक है। उनके जीते-जी मैं क्या खाता हूँ? कितना उड़ाता-कमाता हूँ? कम-से-कम देखती हैं। आँख मुंद

जाने पर उनकी अमर आत्मा को क्या इसका गम नहीं रहेगा कि उन्होंने मुझे इस संसार में एकदम अकेला छोड़ दिया है ? विवाह ही तो ऐसों के जीवन का मार्ग-दर्शक बनता है। माँ को कैसे आश्वासन दूं कि इस सम्बन्ध में उन्हें किंचित् चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। उनके दूध में इतनी क्षमता थी कि यदि दैवात् मैं अकेला रह जाऊँगा, तब भी कोई मुसीबत मुझे शीघ्र पथ-च्युत नहीं कर सकेगी। कैसे समझाऊँ उन्हें कि अमर ने बहुत पहले जो संकल्प कर लिया है, उसे वे निभाने दें। परिणाम बिना चिन्ता के एक बार मैं उस तक पहुँचूं तो ! गिरूँगा भी तो क्या नुकसान ! दो-चार ठोकरें ही मेरे अपूर्ण जीवन को पूर्णता प्रदान करेंगी। काश कि आज पूज्य पिता जी जीवित होते ! क्यों असमय में माँ में निष्क्रियता आती और मुझ जैसे अपरिपक्व-युवक के ब्याह की इतनी फिकर की जाती ! शायद मैं पढ़ रहा होता ! आस-पास मेरे इन्टैलीजेन्स की शोहरत होती ! कॉलेज युनिवर्सिटी से वर्सिरी-स्कालरशिप आदि मिल रही होती ! अस्तु। व्यर्थ ही तो हैं ये सब ! बीते-क्षण को याद कर-करके घाव हरा करने से लाभ ही क्या ? न तो स्व॰॰यि बाबू जी ही मुझे संबल-धैर्य देने आ जायेंगे, न ही, माँ मेरे अटल विचारों से शिकस्त मान लेंगी।

आज मेरे दिमाग में अनेक ऐसे रास्ते घूमने लगे, जहाँ अच्छे-बुरे सब तरह के आदमी आते-जाते हैं। मैं जिस मार्ग का अनुसरण कर रहा था, उससे माँ कदाचित् सहमत नहीं हो सकती थीं। उनसे छिपाया भी नहीं जा सकता कि विवाह मैं अपनी मरजी से करूँगा।

सुषमा से मेरा कोई साम्य नहीं था। फिर भी उसकी प्रतिछवि मुझे अनायास खींच लेती थी। स्पष्ट है कि शारीरिक प्रेम का अहसास कभी नहीं हुआ मुझे। लगता, जैसे वह किसी चमकती-मंजिल पर खड़ी हो और मैं उस तक पहुँचने का उपक्रम कर रहा होऊँ ! सुषमा स्वयं मुझे कभी नहीं बुलाएगी-यह मुझे बखूबी ज्ञात है। मान-मर्यादा का जितना ध्यान उसे है, उतना मेरे लिए दुर्लभ-सा है। एक बार मेरे प्यार की चर्चा उसके घर तक पहुँचे, तो अनुमानतः सुषमा का मुख सहज तिरस्कार

से मर जायगा ! उनके लिए घृणा का खिलौना मात्र रह जाऊँगा मैं, बस !

सब कुछ समझने के बाद भी, यदि मैं सुषमा को महत्व देता रहूँ, माँ को असमंजस में डालकर, तो जरूर अन्याय कहा जायगा। माँ से यदि मैं कुछ न कहूँ, तो बहाना सब तक बनाना रहूँ। एक विचार स्थिर हुआ, कि यदि मैं माँ के जीते-जी सुषमा को भुला दूँ, तो अच्छा रहे ! क्लेश सहने की भी तो सीमा होती है। झूठ बोलकर मैं अपना हृदय छलनी नहीं कर डालना चाहता और। ठीक है कि मैं सम्प्रति विवाह नहीं करना चाहता। वैसी स्थिति भी नहीं अभी मेरी, ऐसा कुछ करने के लिए। सामाजिक-आर्थिक स्थिति सुधारे बिना किसी का कल्याण नहीं हो सकता। यदि इसी तरह सीमित विचारों में खोया रहा, तो मैं उन्नति कदाचित् नहीं कर सकूँगा। प्रगतिगामी व्यक्ति छोटी-मोटी लहरों से कभी नहीं डरते। सतत बढ़ते रहने के लिए कर गुजरने की भावना ही सफलता का दीप जला पाती है। मैं सुषमा को लेकर व्यर्थ परेशान हूँ। वह मेरी प्रेरणा-स्रोत जरूर है। और कुछ तो नहीं है न वह। प्रेरणा तो मुझे मिलती ही रहेगी। सम्भवतः जितना ही कम साक्षात्कार करूँगा उतना ही वह मेरे लिए स्फूर्तिदायक सिद्ध होगी।

निश्चय था कि माँ से सुषमा के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहूँगा अतः उचित नहीं लगा कि मैं सुषमा को एक सफरी साथी की तरह समझ लूँ। जीवन के समस्त व्यापारों से निवृत्ति पाकर ही मैं सुषमा को अपना बनाने का यत्न करूँ। यह मैं जानता था कि सुषमा को यदि मैं हर हटा सकूँगा, तो माँ की भावनाओं का उपशमन भी सहजतः खोज लूँगा।

रात, काफी देर सोचते रहने के बाद मैं इन्द्रिय-जीत हो गया। मैंने नियम-सा बना लिया कि अब मैं माँ की सुख-सुविधा का ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान रखूँगा। विमल ने कारखाने से नौकरी छोड़ दी थी। फिर भी इतना मैं जानता था कि पूँजीपतियों से टकराने का उपयुक्त अवसर अभी नहीं आया है। विमल समझाने पर जरूर मेरे तर्कों का

आदर करेगा। मैंने उसे समझाया भर नहीं। उसका वंदी जीवन भी उभारा है। वह पिघल पड़ेगा। छाती से लग जायगा। एक-एक बात रो-रोकर सुना जायगा। माँ के चरण-स्पर्श करने के लिए व्यग्र हो उठेगा। फिर से घर में रहने लगेगा। जो कहूँगा, करेगा। आवश्यक नहीं है कि विमल रिक्शा न चलाकर यदि किसी कार्यालय में काम करे, तो उसी में जहाँ मैंने उसे कह सुनकर रखाया था। स्वाभिमान बेचकर आदमी का जीवन मिट्टी है।

लाख सोचने के बाद मैंने जिस योजना को कार्यरूप देना चाहा था वह बीच रास्ते में ही असफल होगी, इसका मुझे किंचित् पूर्व आभास नहीं था। विमल मिल जाता, मेरी सलाह से सहमत हो जाता, तो वस्तुतः मुझे भारी परेशानी से छुटकारा मिल जाता! किसी भी लड़की से उसका विवाह कर देता। सब साथ रहते। हँसते बोलते! माँ को भी थोड़ा आराम मिलता। बाबू जी के देहावसान के बाद से हर मास एक नयी बीमारी माँ का पहुँचा पकड़ने लगी है। औषधि कोई ला रखो। कभी खा लेंगीं। कभी इस वास्ते भी उसका नियमित सेवन नहीं करेंगी कि जितनी शीघ्र समाप्त होगी, मुझे पैसे खरचकर और दवा खरीदनी पड़ेगी। माँ को समझा तो सकता नहीं। रोष प्रकट करने से भी उनका कुछ नहीं बनता-बिगड़ता। ज्यादा बोलता हूँ, तो सब ठाकुर जी पर छोड़ देती हैं।'''अब और जीने की लालसा नहीं। भगवान् सुन लेता, बस।'''ऐसे समय माँ जितनी देर बोलतीं, मेरा खून धीरे-धीरे मानो सूखने लगता। किसी तरह बर्दाश्त कर लेता। अन्दर-ही-अन्दर कैसी प्रतिक्रिया होती उनके अपशकुन बोलने पर, कह नहीं सकता। मुसीबत का क्षण बीत जाता और अपना मूड सुधारने हेतु मैं बाहर निकल पड़ता।

घर-बाहर कहीं इन दिनों मन नहीं लग रहा था, मेरा विमल के दूर चले जाने की स्मृति और माँ का बिगड़ता-गिरता शरीर मुझे बेकल किये था। विमल की शादी से माँ को सतांश सान्त्वना मिलने वाली थी। उनका अनायास मौत को आमन्त्रित करना, नैराश्य एवं वैधव्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना, मेरे कुँवारे रहने का कदाचित् उलाहना था।

गरीबी में भी अपने लाडले को सपलीक देखना चाहती है। फिर, मैं तो कुछ कमा भी लेता हूँ। जैसे हम सब खाते हैं रूखा-सूखा, वैसे प्यार उनकी नयी नवेली बहू भी खा सकती है। क्या फर्क पड़ता है, जहाँ दो है, वहाँ एक और बढ़ जाय। माँ का तर्क तो हर सुनने-गुनने वाले के लिए वाजिब है। किन्तु और भीतर क्या है? इसे शायद कोई दूसरा पसन्द न करे। माँ बूढ़ी हो गई हैं? उन्हें अब आराम मिलना ही चाहिये। हमेशा तो रहेंगी नहीं। एक-न-एक दिन तो आँख मूँद ही जायेंगी। क्यों नहीं फिर उनके रहते मैं विवाह कर लूँ। सुख-सुविधा दूँ और बुढ़ापे की चिर कामना फलीभूत करूँ। विमल मिल जाता, तो मैं सब के मुँह धुँए रहने देता और विमल की शादी कर डालने से मतलब रखता।

विमल जिस दुकान से रिक्शा ले-दे जाता था, वहाँ पूछने से ज्ञात हुआ कि अब वह वहाँ से रिक्शा नहीं ले जाता। मुझे दुःख तो था ही कि विमल ने रिक्शा चलाना पुनः आरम्भ कर दिया है। सौभाग्य संतोष इस बात से था कि उसने शोषक रिक्शा-चालक का बहिष्कार कर दिया। दुकान पर पता लगाने से जब उसका निश्चित स्थान ज्ञात नहीं हो सका, तो मुझे कुछ देर यह भी चिन्ता हुई कि कहीं वह शहर छोड़ अन्यत्र तो नहीं चला गया। विश्वास नहीं हो पा रहा था, तथापि आशंका अवश्य हो रही थी मुझे।

दो दिन कारखाने से लौटने के बाद मैंने उसी की खोज-बीन में गुजार दिये। किंवदन्ती है कि अभीष्ट वस्तु चाहने पर कभी नहीं मिलती। आँखें फाड़-फाड़ कर मैं आते-जाते सैकड़ों रिक्शे वालों को देखता। दूर से इक्के-दुक्के संदेह भी होता कि देखो, विमल सवारी बैठाये चला आ रहा है। पता नहीं कैसी आन्तरिक स्थिति हो जाती थी मेरी! क्या देख रहा हूँ? यदि वही हुआ, उस रिक्शे पर तो क्या कहूँगा? कुछ ठगा-ठगा सा पाता था अपने को उस वक्त।

अगर वस्तुतः वह शहर से कूच गया, बिना मुझसे-माँ से मिले, तो निश्चय अच्छा नहीं किया उसने। मुझे रह-रहकर उसकी नासमझी

पर तरस आने लगा। अन्तर्मन हर बार यही कहता कि विमल अभी नहीं है। वह ऐसा कतई नहीं कर सकता। कोई खास मनोमालिन्य नहीं! नौकरी ही तो छोड़ दी उसने। फर्क क्या पड़ता है? काम करने वाले के हेतु क्या लगी और क्या अलगी नौकरी? दस घंटा अटूट श्रम करने वाला नंगा भले रहे! भूखा कभी नहीं सो सकता। श्रम, वह दस घंटे से अधिक करने की क्षमता रखता है। जो पढ़ा-लिखा नवयुवक दो-तीन मोटे-ताजे पूंजीपतियों को सरलता से मीलों एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा सकता है, वह जीविकोपार्जन के लिए क्या नहीं कर सकता? विमल जैसे स्वावलम्बी काफी ऊपर उठ सकते हैं। ये पैर पटक के जमीन से पानी निकाल सकते हैं? पचासों का मुकाविला अकेले कर सकते हैं। इन व्यक्तियों को संयोगात् यदि कोई मार्गदर्शी मिल जाय, तो निःसंदेह वह असाधारण व्यक्तित्व सावित हो। अपने किये कार्य से उसका भविष्य तो उज्जवल बने ही, राष्ट्र-निर्माण में भी उसका श्रम-दान सार्थक समझा जाय।

काफी समय से प्रिंसिपल साहव से मुलाकात नहीं हुई थी। कई मास पूर्व एक दिन उन्होंने घर वुलाया था। इतना व्यस्त रहा कि उनसे मिलने का कुछ ध्यान ही नहीं रहा। अचानक उधर से गुजरते समय जव उनकी याद आई, तो मैं शर्म से गड़ गया। भीतर पहुँचा तो देखा श्याम सामने खड़ा था। मुझे देखते ही सादर भीतर वुलाने लगा। प्रिंसिपल साहव पार्श्व के कमरे में किसी से वात-चीत कर रहे थे। मैंने वाहर खड़े रहना ही उचित समझा। प्रिंसिपल साहव की पत्नी मुझे देख सामने खड़ी हो गयीं। आदि से अन्त तक सैकड़ों वात पूछ गयीं। 'जी-हाँ' कहने के अलावा मेरे मुँह में कोई दूसरा शब्द नहीं था। 'चाय तो पियोगे ही' कहती हुई वे रसोईघर में चली गयीं। मैं उस दर्मियान श्याम से पढ़ाई-लिखाई के सम्वन्ध में वीसों वातें कह-सुन गया।

दस मिनट वीतने पर भी प्रिंसिपल साहव से वातें करने वाले सज्जन जव कार्य-निवृत्त नहीं हुए तो मैं स्वयं सकुचते-सकुचते कमरे तक वढ़ आया। मुझे देखते ही वे नाम लेकर वुलाने लगे। मैं आँखें झुकाए वहाँ

कुछ देर खड़ा रहा। अनन्तर उनके अनेक आग्रहों से दबकर कुर्सी पर बैठ गया। उक्त सज्जन स्कूल के ही कोई नये अध्यापक थे। मेरे बारे में प्रिंसिपल साहब ने ज्योंही कुछ जोड़ा, मैंने फौरन दोनों हाथ जोड़ दिये। सहज मुस्कान बिखेरकर उन्होंने भी मेरा अभिवादन सहर्ष स्वीकारा। यह मैं बिलकुल नहीं चाहता था कि प्रिंसिपल साहब मेरी थोड़ी भी प्रशंसा करें। गुरुजनों के आगे मैं सुन भी कैसे सकता था अपनी तारीफ! जो कुछ हूँ? उन्हीं की बदौलत तो!

मैं सोच रहा था कि प्रिंसिपल साहब शायद टोकें कि मैं उस दिन क्यों नहीं मिला उनसे। उनकी प्रत्येक बात से मुझे आभासित हो रहा था कि वे अब मुझे मात्र अमर नहीं समझते। कोई पिता जिस तरह अपने कमाऊ लड़के से कुछ पूछता है, बिलकुल उसी तरह वे पेश आ रहे थे! हर पूछी बात का उत्तर होता है, किन्तु जिस क्षण किसी से झूठ बोलने का उपक्रम किया जाता है, उस समय बोलने वाले का प्रत्येक अंग हिलने-डुलने लगता है। मेरी पढ़ाई के बारे में जब उन्होंने पूछा, तो कोई सटीक उत्तर मैं नहीं दे सका उन्हें। यदि उनका रुख पूर्ववत् होता, तो कदाचित् वह मुझसे थोड़ा असंतुष्ट हो जाते।

कार्य समाप्त होने से पूर्व ही इस बार वापिस लौटने की इच्छा हो रही थी। मैंने मैनेजर साहब से कभी झूठ नहीं बोला था। यह मुझे मालूम हो चुका था कि मुझसे पूर्व जितने टूरिंग एजेन्ट रखे गए, सब साल-दो-साल बाद निकाल दिये गए। टूरिंग एजेन्ट का काम काफी पेचीदा होता है। मालिक के सामने भले वह कुछ न समझे! बाहर उसका मालिक जैसा सम्मान होता है। चमक-दमक के साथ जब वह काम पर निकलता है, तो मिलने-जुलने वाले यह कल्पना भी नहीं कर पाते कि टूरिंग एजेन्ट किसी कारखाने का नौकर है। मुझे परिस्थिति-वश उक्त पेशा पकड़ना पड़ा था, फलतः अन्य व्यक्तियों में कुछ भिन्न था।

जिसके पास दो-दो महीने तक के लिए माल पड़ा रहता था, उससे भी कह-सुनकर मैं आर्डर ले लेता था। मैनेजर साहब भी कदाचित् इसी-लिए मुझे मानते थे। दिखाने को नौकर जैसा बर्ताव नहीं करते थे, कि

रुपये गिने-गिनाए ही मिलते थे। अपने कार्य के सम्बन्ध में यदि मैं कभी-कभार कोई प्रस्ताव रख देता, तो सहर्ष स्वीकार लेते थे।

गाड़ी पर बैठ गया, तो एक-एक कर बहुत से जरूरी काम याद आने लगे। मैनेजर साहब यदि उसके सम्बन्ध में कुछ पूछेंगे, तो क्या जवाब दूंगा? मन में आया कि मैं उनसे जो कुछ कह दूंगा, वह जल्दी अविश्वास नहीं करेंगे। अन्तरात्मा फिर भी सहमति नहीं दे पा रही थी। मामूली से काम के लिए मुझे इतना ऊँचा-नीचा देखना पड़ रहा था। आदत से इतना सरल-सीधा था कि कोई भी अनुचित काम करते काँप उठता था। जो फितूर मेरे दिमागी पुर्जे ढीले कर रहे थे, मैनेजर साहब से मिलने पर वे सब कस गए। उन्होंने मुझसे एक शब्द भी नहीं पूछा। सिर का मनो-बोझ जैसे हलका हो गया। वापिस लौटने पर ज्यादा खुशी इस बात से हुई कि बिछुड़ा विमल माँ के साथ है।

घर पहुँच कर, यूँ माँ से बहुत-सी बातें हुईं, पर भाभी सुषमा के बारे में उन्होंने मुझे कुछ नहीं बताया। सुबह विमल से मालूम हुआ कि दो-चार दिन पहले भाभी और सुषमा यहाँ आई थीं। वे क्यों आयी थीं? गरीबों के घर कैसे आ गयीं?··· जितना ही मैं सुषमा-भाभी का प्रसंग उड़ाना चाहता, विमल आज उतना ही खोद-खोद कर पूछ रहा था। भाभी मुझसे सहानुभूति रखती हैं? स्टडी ब्रेक होने का उन्हें काफी दुःख है? मेरी नौकरी के लिए वे एजेन्ट साहब से बातें करेंगी!···

जिस सुषमा ने मुझे दूर से वापिस बुला लिया, घर में उसी के संबंध में इतना सब सुनकर मुझे कम प्रसन्नता नहीं हुई। मुझे ईश्वर से अधिक अपनी शक्ति पर विश्वास रहा है। विमल के मुँह से, इधर-उधर की बातें सुनकर मैं कुछ-कुछ झेंप-सा गया। इसकी मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि सुषमा कभी मेरे घर भी आयेगी।

विमल ने जो कहा-सो-कहा। प्रसंगवश माँ ने सुषमा की चर्चा छेड़ दी, तो मुझे जैसे काठ मार गया। चेहरे से नहीं, किन्तु भीतर से जरूर मुझे प्रसन्नता हो रही थी। सच पूछो, तो उस जैसा दिन मेरे जीवन में पहले कभी नहीं आया।

—० समाप्त ०—

रुपये गिने-गिनाए ही मिलते थे। अपने कार्य के सम्बन्ध में यदि मैं कभी-कभार कोई प्रस्ताव रख देता, तो सहर्ष स्वीकार लेते थे।

गाड़ी पर बैठ गया, तो एक-एक कर बहुत से जरूरी काम याद आने लगे। मैनेजर साहब यदि उसके सम्बन्ध में कुछ पूछेंगे, तो क्या जवाब दूंगा? मन में आया कि मैं उनसे जो कुछ कह दूंगा, वह जल्दी अविश्वास नहीं करेंगे। अन्तरात्मा फिर भी सहमति नहीं दे पा रही थी। मामूली से काम के लिए मुझे इतना ऊँचा-नीचा देखना पड़ रहा था। आदत से इतना सरल-सीधा था कि कोई भी अनुचित काम करते काँप उठता था। जो फितूर मेरे दिमागी पुर्जे ढीले कर रहे थे, मैनेजर साहब से मिलने पर वे सब कस गए। उन्होंने मुझसे एक शब्द भी नहीं पूछा। सिर का मनो-बोझ जैसे हलका हो गया। वापिस लौटने पर ज्यादा खुशी इस बात से हुई कि बिछुड़ा विमल माँ के साथ है।

घर पहुँच कर, यूँ माँ से बहुत-सी बातें हुईं, पर भाभी सुषमा के बारे में उन्होंने मुझे कुछ नहीं बताया। सुबह विमल से मालूम हुआ कि दो-चार दिन पहले भाभी और सुषमा यहाँ आई थीं। वे क्यों आयी थीं? गरीबों के घर कैसे आ गयीं?··· जितना ही मैं सुषमा-भाभी का प्रसंग उड़ाना चाहता, विमल आज उतना ही खोद-खोद कर पूछ रहा था। भाभी मुझसे सहानुभूति रखती हैं? स्टडी ब्रेक होने का उन्हें काफी दुःख है? मेरी नौकरी के लिए वे एजेन्ट साहब से बातें करेंगी!···

जिस सुषमा ने मुझे दूर से वापिस बुला लिया, घर में उसी के संबंध में इतना सब सुनकर मुझे कम प्रसन्नता नहीं हुई। मुझे ईश्वर से अधिक अपनी शक्ति पर विश्वास रहा है। विमल के मुँह से, इधर-उधर की बातें सुनकर मैं कुछ-कुछ झेंप-सा गया। इसकी मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि सुषमा कभी मेरे घर भी आयेगी।

विमल ने जो कहा-सो-कहा। प्रसंगवश माँ ने सुषमा की चर्चा छेड़ दी, तो मुझे जैसे काठ मार गया। चेहरे से नहीं, किन्तु भीतर से जरूर मुझे प्रसन्नता हो रही थी। सच पूछो, तो उस जैसा दिन मेरे जीवन में पहले कभी नहीं आया।

—० समाप्त ०—